लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला - 65

शिखरिणी

(प्रत्यग्रगलज्जलिकासङ्कलना)

मार्च 2010 - मार्च 2012

सम्पादकः

आचार्यराधावल्लभत्रिपाठी

त्रिवेणीकविः

मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

मानितविश्वविद्यालयः

(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)

नवदेहली

प्रकाशकः
कुलसचिवः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)
56-57, इन्स्टीट्यूशनलएरिया
जनकपुरी, नवदेहली-110058
ईपीएबीएक्स : 28524993, 28521994, 2854995

e-mail : rsksrp@yahoo.com
website : www.sanskrit.nic.in

ISBN : 978-93-82091-74-5

प्रथमसंस्करणम् : 2013

मूल्यम् : ₹ 134/-

मुद्रक :
अमरप्रिंटिंगप्रैस, दिल्ली - 9
मो. 9871699565

लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला - 65

ŚIKHARINI

(A Collection of Fresh Galajjalikas)
March 2010 - May 2012

Editer

Rādhā Vallabha Tripāthi

Triveni Kavi

Prof. Abhirāja Rājendra Mishra

Rashtriya Sanskrit Sansthan

(Deemed University)

New Delhi

Published by
Registrar
Rashtriya Sanskrit Sansthan
(Deemed University)
56-57, Institutional Area, Janakpuri
New Delhi-110058
EPABX : 28524993, 28521994, 28524995
Gram : SAMSTHAN E-Mail : rsks@nda.vsnl.net.in
Website : www.sanskrit.nic.in

ISBN : 978-93-82091-74-5

First Edition : 2013

Price : ₹ 134/-

Printed at :
Amar Printing Press
Vijay Nagar, Delhi
Tel. 9871699565
E-mail : amarprintingpress@gmail.com

पुरोवाक्

संस्कृतभाषा यथा चिरपुरातनी सनातनी तथैव प्रतियुगं पुनःपुनर्जायमाना उषा इव नवविच्छित्तिं नूतनां च छविमाविर्भावयन्ती वरीवर्ति, अभिनवप्रभाभास्वरं प्रभातं विभावयितुं क्षमा इदानीमपि स्वे महिम्नि प्रतिष्ठिता चास्त इति जानन्त्येव सर्वे सुरभारतीसमुपासकाः। आधुनिके काले अपूर्वैव समृद्धिर्दरीदृश्यते संस्कृतरचनायाः। वस्तुतः साम्प्रतिकोऽयं समयः संस्कृतसाहित्यस्य कश्चन स्वर्णयुग इति वक्तुं शक्यम्। अस्मिन् काले नैके प्रौढा विदग्धास्तथा च उदीयमानास्तरुणास्तेजस्विनः पण्डिताः प्रकटयन्ति संस्कृतस्य शास्त्रवैभवम् तथा च कवयन्ति परश्शतं साहित्यरचनानदीष्णाः सरस्वत्याः सुपुत्राः सुकवयोऽस्यामेव भाषायाम्।

एतादृशेषु महाकविषु स्वकृतित्वेन महीयते जानकीजीवन-मृगाङ्कदूतादिविविधमहाकाव्यखण्डकाव्यप्रणेताऽथ च 'अभिराजयशोभूषणम्' इत्यभिनवकाव्यशास्त्रग्रन्थनिबन्धनव्याजेन काव्यतत्त्वपरिष्कारको महाकविः 'अभिराज' इत्युपनामा श्रीमान् राजेन्द्रमिश्रः। अस्य काव्येषु काचन अपूर्वैव रसनिर्झरिणी प्रवहन्ती दृश्यते। स्मारयन्त्यस्य सुकवेः ललितमसृणस्निग्धाः काव्यबन्धाः क्वचिद् भवभूतेः भावनिर्भरां भारतीं बाणस्य वचोवितानचातुरीं जगन्नाथस्य च मृद्वीकामध्यनिर्यन्मसृणरसनिर्झरीमाधुरीभाग्यभाजो वा वाचः। यत्तु छन्दोमर्मज्ञेन क्षेमेन्द्रेण भवभूतेः शिखरिणीमाश्रित्योक्तम् –

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
चकिता घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥

तद् राजेन्द्रस्य कवेः शिखरिण्यामपि सङ्गच्छते। सिद्धस्य महाकवेरस्य एतस्मिन् प्रकाश्यमाने 'शिखरिणी' इत्याख्ये प्रत्यग्रगलज्जलिकासङ्ग्रहे कवितामाधुरीरसझरी किमपि कामनीयकं व्यनक्ति।

मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः सरस्वत्यास्तत्त्वं प्रकटीकुर्वन् सहृदयहृदि आरचयति काव्यास्वादमनोहरतामुख्यं भावनासंसारम् । युगबोधोऽपीह विलसति भावनासंवलित एव –

यस्याऽभवन्न सुलभं हा तक्रमपि कदाचित्।
अमृतं पिबामि नित्यं वैराग्यनाटकेन॥
आरोपिता न यैका शीर्षे सुवर्णमुद्रा।
पादेन ताः स्पृशामि वैराग्यनाटकेन॥

क्वचित् प्रकृतिवैशिष्ट्यं क्वचिद्राजनीतिं क्वचित् स्त्रीदशां देशस्थितिं वा वर्णयन् महाकविरयमनुप्रासोपमास्वभावोक्तिविशेषोक्तिप्रभृतिशब्दार्था-लङ्कारपरिपूतसुकविताभिः सुविचारितरमणीयाभिः सूक्तिभिश्च प्रमाणयति संस्कृतरचनाधाराया नवनवोन्मेषशालिसातत्यम्। काव्यसन्दोहेऽस्मिन् स्थापितं मधुमयं रसगर्भनिर्भरं सुरगवीपयोऽमृतं निपीय सुधियः सहृदयास्तृप्ति-मनुभविष्यन्तीति दृढमाशास्ते –

राधावल्लभत्रिपाठी
कुलपतिः
रा.सं.सं.,नवदेहली

शिखरिणी

सामान्य व्यक्ति साँसों की आवाजाही से जीवित रहता है। परन्तु रचनाधर्मी कवि विचारों, कल्पनाओं, समुच्छ्वासों के सम्प्लव से जीता है। जैसे साँसों का योग व्यक्ति की उम्र में एक साल और जोड़ देता है वैसे ही विचारों का योग भी कवि की एक नई रचना अस्तित्व में ला देता है।

जैसे प्रसव की पीड़ा उठती है तो रोके नहीं रुकती, जातक के जन्म से ही शान्त हो पाती है, वैसे ही रचनाधर्मी कवि की भी सारस्वत-उत्प्रेरणा 'निर्मिति' से ही शान्त होती है। ये उत्प्रेरणायें आत्मपुरुषार्थ-जन्य नहीं होतीं। वस्तुतः वे स्वतः स्फूर्त होती हैं, शारदानुकम्पाजन्य होती हैं।

कनीनिका, मत्तवारणी, शालभञ्जिका एवं हविर्धानी के अनन्तर मेरा पाँचवाँ गलज्जलिका - संग्रह **शिखरिणी** प्रकाशनार्थ प्रस्तुत है। मेरा सौभाग्य था कि **'शालभञ्जिका'** की सारवती, मन्त्रात्मक समीक्षा, संस्कृत कविता के युग-प्रतिमान प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने की जिसे समसामयिक समीक्षकों ने बहुशः उद्धृत किया है।

आज प्रो. त्रिपाठी प्रतिष्ठा एवं पद के सन्तुलित महार्घ आसन पर अधिष्ठित हैं। कुलपति तो हैं ही **सहृदय-कुलपति** भी हैं। उनके, आशीर्वचनों के साथ **शिखरिणी** का प्रकाशित होना मेरे लिये परम गौरव एवं आत्मतोष का विषय है।

यदि इन ग़ज़लों में मेरा कवि आगे बढ़ा हुआ दीखता है तो मेरी साहित्ययात्रा सार्थक होगी। मैं सम्मान्य कुलपति जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ इस संकलन के प्रकाशनार्थ!

शिमला — सादर, सप्रेम

15 मई 2012 ई. — **अभिराजराजेन्द्रमिश्रः**

शिखरिणी

॥ गलज्जलिकासङ्कलना ॥

शिखरिणी

(प्रत्यग्रगलज्जलिकासङ्कलना)

॥ मार्च 2010 - मार्च 2012॥

मन्दमन्दम्

अतीतस्मृतिः क्षीयते मन्दमन्दम्
भविष्यद्गतिः स्मर्यते मन्दमन्दम्॥1॥

विभुत्वोष्मणा वञ्चितो हा मनुष्यः
स एवाऽन्यथा जायते मन्दमन्दम्॥2॥

प्रदीपेऽधुना स्नेहनैयून्यमीक्षे
यतो वर्तिका वेपते मन्दमन्दम्॥3॥

गतौ मन्दता, वाचि वाचंयमत्वम्
तरुण्यां स्मरः वल्गते मन्दमन्दम्॥4॥

वसन्तेऽधुनाऽरण्यसीमावतीर्णे
पिको भिद्यते वायसान्मन्दमन्दम्॥5॥

अहो, धीवरात्प्राप्य दत्ताङ्गुलीयम्
स्मरत्यादितः पौरवो मन्दमन्दम्[1]॥6॥

गलच्चन्दनां हन्त, निर्मृष्टरागाम्
सखीमीक्षते नायिका मन्दमन्दम्[2]॥7॥

अरिस्तापसस्सोऽपि मद्राजधान्याम्!
दुनोतीति लङ्कापतिर्मन्दमन्दम्[3]॥8॥

गिरिञ्चापि निर्भिद्य याऽग्रेसराऽभूत्
नदी सा मरौ लीयते मन्दमन्दम्॥9॥

अहो, कीदृशं भागधेयं झषाणाम्!
निदाघैः सरः शोष्यते मन्दमन्दम्[4]॥10॥

शिमला

2.3.10 ई.

1. शाकुन्तलकथा-सङ्केतः 2. निश्शेषच्युतचन्दनमिति पद्यं स्मारयति। 3. न्यक्कारो ह्ययमेवेति पद्यं स्मारयति। 4. आपेदिरेऽम्बरपथमिति पद्याशयं व्यनक्ति।

मन्दमन्द

पुरानी यादें धीरे-धीरे क्षीण हो रही हैं, आगे आने वाली स्थितियों का शनैः शनैः बोध (अनुभव) हो रहा है।। 1।।

ओफ् प्रभुता की गर्मी से वञ्चित मनुष्य, मूलतः अ-परिवर्तित होता हुआ भी, धीरे-धीरे कुछ और (ही) हो जाता है।। 2।।

(इस) दिए में अब तेल की कमी देख रहा हूँ क्यों कि (इसकी) बाती काँपने लगी है धीरे-धीरे।। 3।।

चाल में धीमापन और वाणी में मितभाषिता ? इस तरुणी में (निश्चय ही) काम प्रकट हो रहा है धीरे-धीरे।। 4।।

सम्प्रति वसन्त ऋतु के अरण्य-सीमा में उतर आते ही (एक ही रंग का) कोकिल, काक से पृथक् परिलक्षित होने लगा है धीरे-धीरे! ।।5।।

आश्चर्य है कि (शकुन्तला को) पहनाई गई मुँदरी धीवर से प्राप्त करते ही पौरव (दुष्यन्त) धीरे-धीरे (सब कुछ प्रारंभ से ही स्मरण करने लगा है।। 6।।

हन्त! धुले हुए चन्दन-लेप वाली तथा पुँछे हुए अधर-राग वाली सखी को नायिका बिसूर रही है धीरे-धीरे।। 7।।

एक तो तपस्वी (होते हुए भी मेरा) शत्रु? और वह भी मेरी राजधानी में? यह सोच कर लंकापति (रावण) धीरे-धीरे व्यथित हो रहा है।। 8।।

पहाड़ को भी तोड़-फोड़ कर जो आगे जा निकली, वही नदी रेगिस्तान में धीरे-धीरे दम तोड़ रही है।। 9।।

ओह्! कैसा भाग्य है मछलियों का कि (भयावह) गर्मी से सरोवर सूख रहा है धीरे-धीरे।। 10।।

दैवज्ञं कं पृच्छेयम्?

आयुरहो मे कियदवशिष्टं दैवज्ञं कं पृच्छेयम्?
सम्प्रत्यपि किं किं करणीयं दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥1॥

मयि जीवति गाङ्गेयसदृक्षे, सुयोधनादीनां नाशः
भविता वा, न वा समरभूमौ दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥2॥

अधिरथसूनोरिव ममापि सूर्यात्मजता, मरणात्पूर्वम्
पृथया प्रकाशयिष्यते नो वा दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥3॥

प्रतिशाखं सुस्थिरा उलूका अस्मिन्मञ्जुलकेलिवने
समुत्सारयिष्यन्ते नो वा दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥4॥

पामरवसतेः सुखोन्मूलिनी दृष्टिर्द्रविणपिशाचानाम्।
क्वचिदन्यत्र स्थास्यति नो वा दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥5॥

हृदयोदधिमन्थनसमुत्थितं प्राणदाहि मे गरलमिदम्
धूर्जटिना पीयते वा न वा, दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥6॥

जनितस्वापा क्लृप्तसाध्वसाऽपहृतमिथःपरिचयसूत्रा
विपत्तमिस्रा क्षीयते न वा, दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥7॥

कामं श्वेताम्बराः संसदि, व्यवहारे किल दिगम्बराः
निर्वाणं प्राप्स्यन्ति वा न वा, दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥8॥

राष्ट्रमिदं प्रच्छन्नसपत्नैर्बान्धव्याऽभिनयोत्तीर्णैः
मुक्तं हन्त भवेद्वा न वा, दैवज्ञं कं पृच्छेयम्॥9॥

शिमला, रात्रौ 7.26
27.4.2010

किस दैवज्ञ से पूछूँ?

ओह! किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ कि कितनी आयु बची है मेरी? अभी भी, कौन-कौन कार्य करने लायक हैं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ।। 1।।

गाङ्गेय अर्थात् गंगापुत्र भीष्म के समान मेरे जीवित रहते (पापी) सुयोधन आदि का नाश समरभूमि में होगा या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ।। 2।।

अधिरथ-सूनु (कर्ण) के ही समान, मेरे भी **सूर्य-पुत्र होने का रहस्य** पृथा (कुन्ती) द्वारा, मेरे मरने से पूर्व प्रकाशित किया जायेगा या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ?।।3।।

इस मनोरम केलि-वन में हरेक डाल पर उल्लू सुस्थिर होकर बैठे हैं। ये उड़ाए जा सकेंगे या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ।। 4।।

झुग्गी-झोपड़ी बस्ती के चैन-सुख को उन्मूलित कर देने वाली धनपिशाचों (बिल्डर्स) की दृष्टि कहीं और केन्द्रित हो पायेंगी या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ।। 5।।

हृदयरूपी सागर के मंथन से उठा हुआ यह मेरा प्राणदाही (जानलेवा) हलाहल (किसी) धूर्जटी (शिव) द्वारा पिया जाएगा या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ? ।। 6।।

नींद में डुबोने वाली, भय पैदा करने वाली तथा पारस्परिक (एक-दूसरे की) पहचान को नष्ट कर देने वाली यह, विपत्ति की रात क्षीण होगी या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ।। 7।।

भले ही संसद् में सफेदपोश हों (परन्तु) व्यवहार में तो पूर्णतः नग्न हैं (राजनेता-गण) ये निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त कर सकेंगे या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ?।। 8।।

यह (अभागा) राष्ट्र **बन्धुता का अभिनय करने में पारंगत** प्रच्छन्न शत्रुओं से कभी मुक्त हो पाएगा या नहीं? किस ज्योतिर्विद् से पूछूँ।। 9।।

किं ततो भविता?

अनन्तनीलनभो भूरियं ज्वलत्सविता
अहं न जातु भविष्यामि किं ततो भविता?॥1॥

ममापि नाम समयपञ्जिकाङ्कितं दिष्ट्या
तदेव कालिदासतुल्यमक्षयं भविता॥2॥

प्रभूतमेव मया जीवितं नु निर्विघ्नम्
न किन्तु कापि सृतिर्भाविनां कृते विहिता॥3॥

मधौ-मधौ फलन्ति वाटिकासु सहकाराः
इयं सृतिर्नु वेधसैव काङ्क्षया रचिता॥4॥

जगत्यहोऽखिलं नु युज्यते स्वपर्याये
भवेन्नु गेहिनी गेहेऽथ चत्वरे कविता[1]॥5॥

स्पृशामि लौहमयं यं कमप्यहो स्वैरम्
झटित्यवाप्यते तेनैव दीप्तकाञ्चनता॥6॥

मणिं नियोज्य निर्वृतोऽस्मि साहितीदाये
विभाति तेन कृतार्थाऽभिराजदेशिकता॥7॥

शिमला, सन्ध्या 7.31
24.11.10 ई.

---

1. यौवन एव गृहिणी रणरणकं तनोति, न वार्धक्ये।
गोष्ठ्यामेव काव्यमिन्द्रजालं जनयति, न सम्मर्दे।

तब क्या होगा?

अनन्त नीलाकाश! यह पृथ्वी और दहकता सूर्य! **एक मैं ही** यदि कभी नहीं रहा तो क्या बिगड़ जाएगा?।। 1।।

मेरा भी नाम, सौभाग्य से समय के रजिस्टर (काल-पञ्जिका) में दर्ज हो गया है। बस, वही कविकुलगुरु **कालिदास** के समान अक्षय बन जाएगा।। 2।।

बहुत जी लिया मैंने भी बिना बिघ्न-बाधा के। परन्तु आने वाली पीढी के लिए तो कोई आदर्श नहीं स्थापित कर सका।। 3।।

बगीचों में आम भी तो वसन्त-वसन्त में ही फलते-फूलते हैं? यह नियम (परिपाटी) तो विधाता ने ही रच रखा है अपने मन से ।। 4।।

इस संसार में सब कुछ संभव हो पाता है बस **अपनी बारी आने पर**–चाहे वह घर में पत्नी हो अथवा चौराहे पर पढ़ी जाने वाली कविता हो ।। 5।।

मैं तो जिस किसी भी लोह-सरीखे को छू देता हूँ वही, छूने भर से ही देदीप्यमान सुवर्ण-की कान्ति प्राप्त कर लेता है।। 6।।

अपनी रचनाधर्मिता के उत्तराधिकार में मणि (जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि') को नियुक्त कर मैं निश्चिन्त हो उठा हूँ। बस, उतने भर से ही अभिराज की देशिकता (उपाध्यायत्व) कृतार्थ हो उठी है!।।7।।

शतं धारयेऽहम्

गतिं प्रेक्ष्य लोलां मदाऽघूर्णितां ते
कुरङ्गि! स्फुटं दोलनं कामयेऽहम्॥1॥

रतिस्त्वं कनीनीशरं सन्दधाना
शुभे! लक्ष्यमात्मानमेवाऽर्पयेऽहम्॥2॥

क्वचिद्गर्ति, तुङ्गं क्वचित्पिच्छिलं वा
दुरारोहशैलं वपुस्तर्कयेऽहम्॥3॥

न वा खिद्यते यौवनं बन्धुराङ्गैः
अहो सौम्यसौम्यं तदालक्षयेऽहम्॥4॥

वयस्सन्धिमुत्प्रेक्ष्य ते सन्दिहानः
शिशुं त्वां क्वचित्कामिनीं भावयेऽहम्॥5॥

खनिस्तावकी दृष्टिरञ्चद्रसानाम्
अशान्ताष्टमूर्तिं रसं त्वां श्रयेऽहम्॥6॥

विभावाऽनुभावैः श्रितां चारिभिस्त्वाम्
रसस्याखिलां चर्वणां कल्पयेऽहम्॥7॥

त्वमस्युत्तमर्णाऽधमर्णोऽस्मि सोऽहम्
ध्रुवं जीवनानां शतं धारयेऽहम्॥8॥

शिमला, 23.3.11 ई.
10 प्रातः।

उधार सैकड़ों जीवन!

यह मद (मस्ती) से आघूर्णित तुम्हारी लरजती चाल को देख कर हे कुरंगी; मैं सचमुच तुम्हें **'हिण्डोला'** समझने लगा हूँ।। 1।।

कनखियों का शर-सन्धान करने वाली (साक्षात् कामप्रिया) रति हो तुम। हे शुभे! लक्ष्य (शिकार) के रूप में मैं अपने-आप को ही अर्पित कर रहा हूँ।। 2।।

कहीं गहरा (नाभिगर्त) कहीं समुन्नत (उरोज) और कहीं पिच्छिल (फिसलन-भरा) तुम्हारे शरीर को **दुरारोह शैल** ही मानता हूँ।। 3।।

तुम्हारे बन्धुर (मनोरम) अंगों से यौवन को भला खेद (थकान) कैसा? ओफ्! मैं तो उसे अतिशय सौम्य ही देख रहा हूँ।। 4।।

तुम्हारी वयस्सन्धि (शैशव तथा यौवन का जुड़ाव) को निहार कर तो मैं सन्देह-ग्रस्त हो उठा हूँ। कभी तुम्हें **बच्ची** (बाला) तो कभी **कामिनी** समझता हूँ।। 5।।

तुम्हारी दृष्टि (चितवन) तो रमणीय नौ रसों की खान (उद्भवस्थली) हैं। मैं तो तुम्हें शान्त-रसरहित (अथवा अशान्त-चञ्चल) अष्टमूर्ति रसात्मक शिव मान रहा हूँ।। 6।।

विभावों, अनुभावों तथा सञ्चारी भावों से परिपुष्ट तुम्हें मैं रस का साङ्गोपाङ्ग दर्पण (अनुभूति) ही मानता हूँ।। 7।।

तुम हो उत्तमर्ण (कर्ज देने वाली) और मैं हूँ तुम्हारा अधमर्ण (कर्जदार) निश्चय ही मेरे सैंकड़ों जीवन तुम्हारे **'उधार'** के ही हैं।। 8।।

लक्षयेऽहम्

त्वदीयाऽननं दर्पणं सुभ्रु! मन्ये
यतस्तत्र बिम्बं स्वकं लक्षयेऽहम्॥1॥

स्फुरद्दीर्घिके द्वे शुभे! लोचने ते
यतस्तज्जले निर्भरं गाहयेऽहम्॥2॥

लसद्वेणिकाबन्धसानु प्रपश्यन्
वपुस्ते रमामन्दिरं भावयेऽहम्॥3॥

रणन्नूपुरे भृङ्गगीतानि शृण्वन्
स्मरोद्यानमेवान्तिके लोकयेऽहम्॥4॥

तव स्वर्णकाञ्चीं चिरं प्रेक्षमाणः
अमोघां मनोवागुरां तर्कयेऽहम्॥5॥

भ्रमन्तीं शनैर्मत्त्रजुकादम्बगत्या
कलामैन्दवीं त्वामहं कल्पयेऽहम्॥6॥

क्वचिद्बर्हिणां चातकानां पिकानाम्
स्वरैरेव ते सन्निधिं संश्रयेऽहम्॥7॥

कियच्चारु तन्वङ्गि! चित्रं वपुस्ते
ध्रुवं पार्थिवं नन्दनं धारयेऽहम्॥8॥

विधत्सेऽभिराजस्य चित्तं मुषित्वा
स्मितं, स्यां कथं तत्तव प्रत्ययेऽहम्॥9॥

शिमला, रामनवमी
12.4.11, रात्रिः 8.42

देखता हूँ

हे सुभ्रु! दर्पण मानता हूँ मैं तुम्हारे मुख को, क्यों कि उसमें मैं अपना चेहरा देख लेता हूँ।। 1।।

तुम्हारे रमणीय वेणी-बन्ध (जूड़े) के **शिखर** को देखता हुआ मैं तुम्हारे शरीर को **'रमामन्दिर'** ही अनुभव करता हूँ।। 3।।

(तुम्हारे) छनकते विछुवों में भ्रमरों की गुञ्जार सुनता हुआ मैं, स्मरोद्यान को तुमसे लिपटा हुआ ही देखता हूँ।। 4।।

तुम्हारी सुवर्णकाञ्ची (सोने की करधनी) को देर तक निहारता हुआ मैं, उसे मन को बाँधने वाली, अमोध रज्जु ही मानता हूँ।। 5।।

श्वेत-शान्त राजहंस की गति से, शनैः भ्रमण करती तुम्हें मैं (सञ्चरणशीला) चन्द्रकला ही कल्पित करता हूँ।। 6।।

तुम्हारे स्वरों से ही मैं कभी मयूरों के, तो कभी पपीहों के और कभी कोकिलों के साहचर्य का एहसास करता हूँ।। 7।।

हे तन्वङ्गि! कितनी रमणीय और विस्मयावह है तुम्हारी कान्त काया! सचमुच, धरती पर उतरी नन्दनवनिका प्रतीत होती हो।। 8।।

अभिराज के चित्त को चुरा कर गुस्करा रही हो तुम? कैसे करूँ मैं तुम्हारा विश्वास।। 9।।

देहि मे प्रददामि ते

नीतिरेषा सर्वमङ्गलसाधिका सुखदायिनी
या कलौ विचिताऽस्ति सा त्वं देहि मे प्रददामि ते॥1॥

सिन्धुरपि जलमाददानं भणत्येव बलाहकम्
भद्र! जलमासारवृष्ट्या देहि मे प्रददामि ते॥2॥

वसुमती कृषकं वदति संस्कृत्य कुरु मामुर्वराम्
बीजचयमाधेहि भरणं देहि मे प्रददामि ते॥3॥

वाटिका ब्रूते वसन्तं कलय मां यौवनवतीम्
पिकरवैर्दास्ये यशस्ते देहि मे प्रददामिते॥4॥

कविमलङ्कारो वदति कुरु संविधानकमुत्तमम्
पूर्णतामहमातनिष्ये, देहि मे प्रददामि ते॥5॥

अपरवेधास्त्वमसि सुकवेऽनन्यपरतन्त्रामिमाम्
साहितीं मां सृजसि सरसां देहि मे प्रददामि ते॥6॥

धीरियं मनुजं भणति त्यज नैव धैर्यं संयमम्
उद्धरिष्ये विपन्निमिषे देहि मे प्रददामि ते॥7॥

यज्ञसंस्कृतिरियमहो प्राक्तनमनीषिभिरादृता।
शाश्वती श्रेयस्करी सा देहि मे प्रददामि ते॥8॥

प्रतिपथं ननु जीवने साफल्यदा, सुखशान्तिदा
सरणिरेषा धार्यतां भो देहि मे प्रददामि ते॥9॥

शिमला, रात्रिः 7.37
13.4.11

लेन-देन

यह नीति समस्त मंगलों को सिद्ध करने वाली तथा सुख देने वाली है जिसकी खोज कलिकाल में की गई है। और वह है–तुम मुझे दो और मैं तुम्हें दूँ।। 1।।

जल ग्रहण करते हुए बादल से समुद्र भी यही कहता है–भद्र! मैं तुम्हें दे रहा हूँ, तुम भी धारासार वृष्टि कर जल मुझे देना।। 2।।

धरती किसान से कहती है–मेरा संस्कार करके, मुझे उपजाऊ बनाओ। बीज-भण्डार का मुझ में आधान कर मेरा पेट भरो और मैं तुम्हें (अन्न) दूँगी।। 3।।

वाटिका (उपवन) वसन्त से कहती है–मुझे यौवन-सम्पन्न बनाओ। मैं भी तुम्हें कोकिलों के कूजन से कीर्ति प्रदान करूँगी। तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूँगी।। 4।।

अलंकार कवि से कहता है–मेरा उत्तम संविधानक रचो तो मैं पूर्णता को प्राप्त कर लूँगा। मुझे दो, मैं तुम्हें दूँगा।। 5।।

अपर वेधा (दूसरे ब्रह्मा) हो तुम! हे सुकवि! अनन्य-परतन्त्र मुझ सरस साहिती (कविता) की सर्जना करो। मुझे जीवन दो, मैं तुम्हें (सब कुछ) दूँगी।। 6।।

यह बुद्धि कहती है मनुष्य से कि धैर्य एवं संयम को (कभी) मत छोड़ो विपत्ति के क्षणों में (तभी) मैं तुम्हारा उद्धार करूँगी। तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूँगी।। 7।।

प्राचीन विद्वज्जनों द्वारा समादृत है यह यज्ञ-संस्कृति, जो शाश्वती है, श्रेयस्करी है (वह भी कहती है) तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूँगी।। 8।।

जीवन की प्रत्येक राह में सफलता एवं सुख-शान्ति देने वाली है यह परम्परा! इसे गाँठ बाँध लो मेरे भाई! तुम मुझे दो, मैं तुम्हें देता हूँ।। 9।।

ननु कीदृशं जातं पुरम्?

बधिरा अभूवन् वीथिका अन्धाः पुनर्घण्टापथाः
मूकाश्च जाता नागरा ननु कीदृशं जातं पुरम्॥1॥

गृहचुल्लयः पातिव्रतं बिभ्रति नितान्तमुपोषिताः
पामरकुटीषु प्रायशो ननु कीदृशं जातं पुरम्॥2॥

कीचकनिभैर्जनघर्षणैः सन्दीपिताः स्वयमग्नयः
दन्दह्यते येनाऽखिलं ननु कीदृशं जातं पुरम्॥3॥

निर्वान्ति संन्तप्तानिलाः परितोऽपि जनवार्तोद्गताः
ज्वरपीडिताः सर्वेऽप्यहो ननु कीदृशं जातं पुरम्॥4॥

ग्रीष्मे न धर्मस्तापयति शीते न शैत्यं बाधते
सर्वंसहत्वमहोऽद्भुतं ननु कीदृशं जातं पुरम्॥5॥

अपहाय भैक्ष्यं दस्युतस्करवञ्चका अपहारकाः
भूत्वा समे सुखिनोऽधुना ननु कीदृशं जातं पुरम्॥6॥

क्व नु नर्तनं गृहगीतयः क्व नु नर्महास्यकथानिकाः
यन्त्राश्रितं मधुरस्मितं ननु कीदृशं जातं पुरम्॥7।

अर्हं प्रवेष्टुं नाऽत्र सत्यं नो शिवं न च सुन्दरम्
अशुभं प्रनृत्यति सर्वतो ननु कीदृशं जातं पुरम्॥8॥

तिष्ठन्ति केचन सज्जना अवकेशिनो वाट्यामिव
बब्बूलखदिरैर्न्यक्कृता ननु कीदृशं जातं पुरम्॥9॥

अपराह्णः 2.16
शिमला-आवासः
4.7.2011 ई.

कैसा हो गया शहर?

बहरी हो गई हैं गलियाँ, अन्धी हो उठी हैं सड़कें और गूँगे हो गए हैं नगरवासी! सचमुच, क्या हो गया है मेरे शहर को।। 1।।

निरन्तर उपवास रखने वाली घर की चुल्लियाँ (चूल्हे) पातिव्रत-धर्म निभा रही हैं दिहाड़ी मजदूरों की झोंपड़ियों में–रोज़-ब-रोज! सचमुच, क्या हो गया है मेरे शहर को।। 2।।

सूखे बाँस जैसे आदमियों की रगड़ से खुद-ब-खुद आग पैदा हो जा रही है जिससे सारा समाज सन्दग्ध हो रहा है। सचमुच, क्या हो गया है मेरे शहर को।। 3।।

चारों ओर, लोगों की आपसी बातचीत-मात्र से दहकती आग (गर्मलू) बहने लगी है। आश्चर्य है, सबके सब बुखार से पीड़ित हो उठे हैं। क्या हो गया है मेरे शहर को।। 4।।

(अब) न गर्मी में धूप सन्तप्त करती है, न जाड़े में ठण्ड बाधित करती है। सब कुछ सह लेने की अद्भुत सामर्थ्य पैदा हो गई है लोगों में (अर्थात् लोग संवेदनहीन हो उठे हैं) क्या हो गया है मेरे शहर को।। 5।।

भीख माँगना छोड़, अब सब के सब दस्यु (डकैत) तस्कर, वञ्चक (ठग) तथा अपहारक (किडनैपर) बन कर **परम सुखी** बन गए हैं। क्या हो गया है मेरे शहर को।। 6।।

कहाँ रहा नृत्य, कहाँ रहे गाँव-गिराँव के गीत और कहाँ रही हँसी-मजाक से भरी किहिनियाँ? अब तो मीठी मुस्कान भी टी.बी. सीरियल के अधीन है। क्या हो गया है मेरे शहर को।। 7।।

इस शहर में घुसने के लिए सत्य, शिव तथा सुन्दर की पात्रता नहीं। चारों और बस अमंगल नाच रहा है। क्या हो गया है मेरे शहर को।। 8।।

कुछेक **सज्जन** बच रहे हैं, यहाँ, बगीचे में ठूँठ पेड़ों की तरह! ऐसे पेड़ जो बबूल तथा खैर आदि से तिरस्कृत हैं। क्या हो गया है मेरे शहर को।। 9।।

सैव राजनेतृताऽस्माकम्

शासने सम्मता जाताऽस्त्यभद्रताऽस्माकम्
अन्यथाऽन्यत्र विभो! क्वास्ति पात्रताऽस्माकम्॥1॥

शिलीन्ध्रवन्नु वयं कच्चरे वृथा जाताः
श्रुता नु केन जगति काऽपि सार्थताऽस्माकम्॥2॥

धनं विलोक्यतेऽस्माभिस्सदैव मलकल्पम्
तदीयभक्षणे सिद्धाऽस्ति पोत्रिताऽस्माकम्॥3॥

समाजवेणुवने हन्त वयं सुमकल्पाः
समाजनाशने तस्माच्च हेतुताऽस्माकम्॥4॥

गुणेषु नैव रतिर्नाऽप्यहो चरित्रबलम्
दुर्निवारा तथापि लोकतन्त्रताऽस्माकम्॥5॥

घुणा वयं नु सौम्यराष्ट्रदारुसंलग्नाः
भक्षयिष्याम इदं सिद्धशत्रुताऽस्माकम्॥6॥

राजनीतौ स्थिता विहाय भो भयं लज्जाम्
प्रत्यभिज्ञायते न केन षण्ढताऽस्माकम्॥7॥

अद्य कण्ठीरवाः श्व एव शृगाला भूयः
अलं भयेन, सैव राजनेतृताऽऽस्माकम्॥8॥

तवाऽस्ति योगपथस्साधु योगमाराधय
ममाऽस्ति भोगपथस्तर्हि भोक्तृताऽस्माकम्॥9॥

अपराह्णः 4.16
शिमला-आवासः
4.7.11 ई.

वही है हमारी नेतागीरी

शासन में हमारी प्रतिष्ठा हो गई–यही हमारी **अभद्रता** है। अन्यथा हे परमेश्वर! कोई और कार्य करना होता तो हमारी क्या पात्रता (योग्यता) थी?।। 1।।

हम तो कुकुरमुत्ते की तरह, बेमतलब ही, कचड़े में पैदा हो गए। ऐसे निरर्थक पदार्थ की भाँति हमारी सार्थकता संसार में भला किसने सुनी।। 2।।

हम लोग धन-सम्पत्ति (माल) को सदैव मैले के रूप में देखते हैं और उस **मैले** को गटकने में भी हमी समर्थ हैं–क्योंकि सूकर हैं हम।। 3।।

समाजरूपी बाँसों के बन में हम उस (बाँस) के फूल सरीखे हैं। इसलिए, समाज को नष्ट कर देने की ताकत है हममे[1]।। 4।।

न गुणों के प्रति हमारी रति (आकर्षण) है और न ही हममें चरित्र-बल है। फिर भी समाज पर राज करने की हमारी तुनक को कोई रोक नहीं सकता।। 5।।

हम तो घुन (कीड़ा) हैं जो कि महान् भारतराष्ट्र रूपी लकड़ी में पैदा हो गए हैं। **हम इसे खाकर ही छोड़ेंगे।** क्यों कि (काठ से) हमारी शत्रुता जन्मसिद्ध है।। 6।।

मेरे भाई! हम **भय और लज्जा को ताक पर रखकर,** राजनीति में आये हैं। अन्यथा हमारी (सर्वविध) नपुंसकता को कौन नहीं पहचानता (कि हम किसी भी काम के नहीं हैं)।। 7।।

आज (सरकार बन जाने पर) हम **बबर शेर** हैं। कल ही (चुनाव आते ही) पुनः-**सियार** बन जाएंगे। परन्तु डरने की कोई बात नहीं! यही तो चरित्र है हम राजनेताओं का।। 8।।

तुम्हारा रास्ता योग का है। अच्छी बात है, योग की सिद्धि करो। परन्तु हमारा तो भोग का मार्ग है। इसलिए हमारे भोग में दखल मत दो।।9।।

1. कहावत है–बीछू केला बाँस–अपने जनमें नाश! अर्थात् विच्छू, केला तथा बाँस में फूल-फल आ जाए तो वे सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं।

कौशेयवासोभिरुर्णूयते

अद्य सन्दृश्यते हन्त शुष्का नदी
नौकया तीर्यतेस्मेति संश्रूयते॥1॥

भारतेऽतः परं किन्नु चित्रं भवेत्
यत् त्रिरङ्गध्वजोऽद्यात्र दोधूयते॥2॥

घोषितो यस्य राज्याभिषेकोत्सवः
प्रेक्ष्य निर्वासनं तस्य, हृद् दूयते॥3॥

मा शुचं गा अहल्ये! त्वदुद्धारकः
कौशिकेनाऽश्रमे राम ऋआहूयते॥4॥

बुद्धिगर्वं वृथा, मां न सन्दर्शय
दूर्वयाऽप्यश्मगर्भान्न किं सूयते॥5॥

सात्त्विको रागबन्धापहारी हरिः
किं मुधैश्वर्यहेतोः स संस्तूयते॥6॥

नेत्रयोस्तन्वि! ते सर्वमुट्टङ्कितम्
किं रहस्यं नु मत्तोऽत्र निह्नूयते॥7॥

हन्त वीचीषु लीनो भुजङ्गः क्वचित्
व्यर्थमेवाऽधुना किं जलं धूयते॥8॥

जीवितः प्रीतवाग्भिर्न सम्भावितः
सोऽद्य कौशेयवासोभिरुर्णूयते॥9॥

रात्रिः 8.23
शिमला-आवासः
4.7.11 ई.

रेशमी कफन

हाय, आज (तो यह) नदी सूखी दिखाई पड़ रही है। परन्तु सुनते हैं कि यह नाव से पार की जाती थी।। 1।।

इससे बड़ा आश्चर्य भारतराष्ट्र में और क्या होगा कि आज यहाँ तिरंगा झण्डा फहरा रहा है (अर्थात् यह स्वतंत्र है)।। 2।।

जिसके राज्याभिषेक–उत्सव की घोषणा की जा चुकी थी उसीका निर्वासन (वनवास) देख कर दिल बैठा जा रहा है।। 3।।

देवी अहल्या! व्यथित मत होओ। तुम्हारा उद्धारक (दशरथनन्दन) राम, विश्वामित्र द्वारा (अपने) आश्रम में बुलाया जा रहा है।। 4।।

व्यर्थ में ही, बुद्धिबल का घमण्ड मुझे मत दिखाओ। अरे पत्थर के पेट से भी क्या दूब अंकुरित नहीं हो जाती।। 5।।

रागबन्ध (सांसारिक प्रपञ्च) को हरने वाले नारायण सात्विक प्रकृति के हैं। सांसारिक सुख–वैभव पाने के लिए उनका संस्तवन करना भला किस काम का।। 6।।

हे तन्वी! सब कुछ तो तुम्हारी आँखों में ही लिखा हुआ है। तो फिर मुझसे कौन रहस्य छिपा रही हो।। 7।।

मेरे भाई! साँप तो कहीं लहरों में अदृश्य हो चला है। अब बेकार में ही पानी को क्यों पीट रहे हो।। 8।।

जब जीवित था तब तो प्रीतिभरी वाणी से इज्जत नहीं की (अब) मरे हुए उसी (शव) को रेशमी कफन से ढँका जा रहा है।। 9।।

तैर्विदेशे धनं सञ्चितम्

निर्मितुं राष्ट्रमिध्दं नु यैः प्रस्थितम्
केवलं तैर्विदेशे धनं सञ्चितम्।।1।।

ये नियुक्ता जगन्नाथदेवार्चने
अर्चकैस्तैः स्वयं मन्दिरं वञ्चितम्।।2।।

जम्बुकीसेवयाऽप्तं वने शासनम्
लुब्धसिंह! त्वया गर्हितं किं कृतम्।।3।।

षण्ढमेकं पुरस्कृत्य भीष्मो हतः
सव्यसाचिन्! क्व ते युद्धशौर्यं गतम्।।4।।

नाऽवमन्तुं क्षमोऽवन्ध्यकोपोऽपि सन्
केन तत्तामसं साहसं मे हृतम्।।5।।

यत्सुतावेव दुर्योध्यदुश्शासनौ
तेन कस्माद् दृगन्धेन राष्ट्रं धृतम्।।6।।

केरलेनाऽवितोऽनन्तरत्नोच्चयः[1]
मन्त्रिणा[2] वर्षमात्रेऽखिलं लुण्ठितम्।।7।।

काञ्चन! त्वत्कृते किन्न सोढं मया?
बन्धनं भर्त्सनं सर्वजनथूत्कृतम्[3]।।8।।

भेकसम्मर्दमालोक्य मेघागमे
कोकिलैः कण्ठमाकुञ्च्य सम्यक्कृतम्।।9।।

पूर्वाह्णः 10.46
शिमला-आवासः
6.7.11 ई.

---

1. पद्मनाभमन्दिराधिकारिभिः। 2. सुरेशकलमाडिना। 3. ए. राजोक्तिः।

विदेशी धन

जिन्होंने प्रस्थान किया था इस राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए, उन्होंने बस विदेशी बैंकों में सम्पत्ति जमा की।। 1।।

जो (पुजारी) जगन्नाथ-स्वामी की अर्चना में नियुक्त किए गए थे उन्हीं पुजारियों ने खुद मन्दिर को लूट लिया।। 2।।

सियारिन की जी-हुजूरी करके जंगल पर शासन करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। लालची शेर! यह कैसा निकृष्ट कार्य तूने कर डाला।। 3।।

एक नपुंसक (शिखण्डी) को आगे खड़ा कर भीष्म को मार डाला? सव्यसाची अर्जुन! कहाँ गया तुम्हारा युद्धशौर्य।। 4।।

मैं निष्क्रिय क्रोध वाला नहीं हूँ (तथापि) किसी का अपमान नहीं कर सकता! मेरा वह तामसी साहस किसने छीन लिया ।। 5।।

जिसके बेटे ही हों **दुर्योधन और दुश्शासन,** उस आँख के अन्धे ने राष्ट्र की बागडोर क्यों और कैसे पकड़ रखी है।। 6।।

केरल (के पद्मनाभ मन्दिर) ने तो अनन्त रत्नों की राशि को (धैर्यपूर्वक) सुरक्षित कर रखा है। परन्तु मंत्री जी (कलमाड़ी) ने तो साल भर में ही सारा भट्ठा बैठा दिया।। 7।।

हे सुवर्ण! तुम्हारे लिए क्या नहीं सहा मैंने? गिरफ्तार हुआ, भर्त्सित हुआ तथा जन-जन द्वारा थुक्का-फजीहत किया गया।। 8।।

वर्षा ऋतु में दादुरों की टोली (उमड़ी) देखकर कोकिलों ने अपने कण्ठ पर विराम लगा कर अच्छा ही किया।। 9।।

त्रुटिर्हन्त जाता

परावृत्य मार्गात् त्रुटिर्हन्त जाता
मयोदङ्मुखेन प्रतीची दिगाप्ता॥1॥

अनाख्याय हेतुं कथं ज्ञापयेयम्!
यदक्ष्णोरियं शर्वरी मे प्रभाता॥2॥

अनाथा धरित्री कथं सौख्यमीयात्
न यस्याः पिता रक्षको नाऽपि माता॥3॥

स्वतन्त्रा नु शार्दूलविक्रीडितास्ते
व्यथन्तेऽधिकारं भुजङ्गप्रयाताः॥4॥

स्वतन्त्रेऽपि देशेऽस्वतन्त्राः प्रदेशाः
क्वचिद् गोरखा क्वापि तैलङ्गवाताः॥5॥

न काश्मीरमासीदिदं भारताङ्गम्
ब्रवीतीति काचिन्नवैतिह्यमाता॥6॥

न नद्यः परावर्तितुं हन्त शक्याः
न चाऽप्यूर्ध्वगास्ते क्रियेरन् प्रपाताः॥7॥

भुवं भारतीं मार्गयानि क्व भिन्नाम्!
क्वचिद् द्वारकाऽसौ क्वचित्कोलकाता॥8॥

अहो शारदाया गृहे नृत्यगीतम्
सुतास्तेऽभिराजादयो यत्प्रजाताः॥9॥

अपराह्णः 4.25
शिमला-आवासः
6.7.11 ई.

गल्ती हो गई

जानी-बूझी पगडण्डी छोड़ कर गल्ती हो गई मुझसे। जा रहा था उत्तर की ओर और पहुँच गया पश्चिम दिशा में।। 1।।

बिना कारण बताए कैसे जानकारी दूँ कि आँखों में ही मेरी रात सिरा गई।। 2।।

यह अनाथ (बेसहारा) धरती कैसे सुख प्राप्त करे, जिसका न तो कोई रक्षक पिता है, न ही माता।। 3।।

जो बबर शेर की तरह कुलाँचें भरने वाले हैं वे तो स्वतंत्र हैं और जो साँप जैसी चाल चलने वाले थे वे जेलों में सड़ रहे हैं।। 4।।

स्वतंत्र राष्ट्र में भी (उसके) राज्य अ-स्वतंत्र (बेलगाम) हैं। कहीं गोरखालैण्ड की माँग है तो कहीं तेलंगाना की हवा बह रही है।। 5।।

यह काश्मीर (कभी) भारत का अंग नहीं था, ऐसा कह रही हैं कोई **इतिहास की नई माता-श्री**।। 6।।

ओफ्, न ही नदियों को पीछे लौटाया (मोड़ा) जा सकता है और न ही (नीचे गिरते) झरनों को ऊपर की ओर उछाला जा सकता है।। 7।।

अलग-अलग नामों से बँटी हुई भारत की धरती को कहाँ ढूँढू। कहीं बह 'द्वारका' के नाम से जानी-पहचानी जाती है तो कहीं 'कोलकाता' के नाम से।। 8।।

वाह वाह! माँ शारदा के घर में नाच-गान हो रहा है क्योंकि (उसके घर में) अभिराज आदि बेटे पैदा हुए हैं।। 9।।

निरर्थाऽभवत्

निरर्थाऽभवन्मत्कृते बाह्यसृष्टिः
यदारभ्य सा ते दृशोरेव दृष्टा॥1॥

निसर्गस्समग्रोऽप्यभून्मूर्तमूर्तः
यदाऽऽलोकिता त्वं मया सुभ्रु! हृष्टा॥2॥

गुरोर्देशना सुस्थिरं मामकार्षीत्
यदा द्वैधकाले मया त्वं विमृष्टा॥3॥

क्षतानामहो पूरणी शल्यहन्त्री
त्वमेवासि सञ्जीवनी धातृसृष्टा॥4॥

वपामि त्वयि प्रीतसन्तानबीजम्
त्वमस्युर्वरा मालभूमिर्नु कृष्टा॥5॥

न मेऽपेक्षिता स्वर्णसीताऽश्वमेधे
यतो वामभागे मम त्वं द्रढिष्ठा॥6॥

ध्रुवं देवि! विद्धीह मे वाऽपरत्र
त्वमेवासि भक्तिस्त्वमेवासि निष्ठा॥7॥

त्वया शैलपुत्र्याऽस्म्यहं किन्न शम्भुः?
ममैश्वर्यभूत्या यदि त्वं प्रतुष्टा॥8॥

जगद्रञ्जनायाऽवयो रम्यनाट्यम्
अहं ताण्डवे त्वञ्च लास्ये विशिष्टा॥9॥

पूर्वाह्णः 9.15
कोटपूतली
7.7.2011 ई.

निरर्थक हो गई

जब से मैंने संसार को **तुम्हारी आँखों से** देखना प्रारम्भ किया, मेरे लिए तभी से वह बाहरी दुनियाँ बेकार लगने लगी।। 1।।

हे सुभ्रु! जिस छन मैंने प्रसन्नवदना तुम्हें निहारा, सारी की सारी (अचेतन) प्रकृति मुझे परम जीवन्त प्रतीत होने लगी।। 2।।

जब शंका-सन्देह की घड़ी में मैंने तुम्हारा परामर्श प्राप्त किया तो (एक सच्चे) गुरु की देशना ने मुझे सुस्थिर (दृढ़) बना दिया।। 3।।

आश्चर्य है, मेरे घावों को भरने वाली, चोटों (पीड़ाओं) को हरने वाली, विधाता की रची **सञ्जीवनी** (औषधि) एक तुम्हीं हो।। 4।।

जोती गई, उपजाऊ कृषियोग्य धरित्री हो तुम। तुम्हीं में मैंने प्रीत (मनोऽभिलषित) सन्तानरूपी बीज को बोया है।। 5।।

(अब अपने जीवन के) अश्वमेध-याग में मुझे किसी **'सोने की बनी सीता'** की आवश्यता नहीं क्योंकि मेरे वामभाग में तुम बैठी हो दृढ़तापूर्वक।। 6।।

हे देवि! अच्छी तरह जान लो कि यहाँ (संसार) और वहाँ (परलोक में) तुम्हीं मेरी 'भक्ति' हो, तुम्ही मेरी 'निष्ठा' हो ।। 7।।

तुम शैलपुत्री (हिमाचलनन्दिनी) के रहते क्या मैं शम्भु नहीं बन गया हूँ? बशर्ते कि तुम मेरे ऐश्वर्य (सारस्वत-कीर्ति) एवं विभूति से पूर्णतः तुष्ट हो।। 8।।

हम दोनों का मनोरम (जीवनरूपी) नाट्य लोकानुरञ्जन-मात्र के लिए है। मैं प्रवीण हूँ ताण्डव में और तुम भी अप्रतिम हो लास्य में।। 9।।

भान्ति ता अनुत्तमाः

अङ्गुलयस्सर्वा नैव समाः
इयमेव विशिष्टा करसुषमा।।1।।

उच्चाटनमारणमोहनेषु
तर्जनी युज्यते महत्तमा।।2।।

गणनारम्भं विदधाति सदा
केवलं कनिष्ठा लघूत्तमा।।3।।

करपल्लवशोभामातनोति
सर्वासु मध्यमा प्रांशुतमा।।4।।

पूजासु पवित्रीमाधत्ते
अङ्गुलिरनामिका मनोरमा।।5।।

मन्यते तृणाय बलिष्ठमपि
अङ्गुष्ठोद्यम्य हि धुर्यतमा।।6।।

काऽपीह रविं मङ्गलं शनिम्
अनुकूलयति ग्रहतिलोत्तमा।।7।।

ननु निरुद्यमास्ताः पृथक्पृथक्
सम्भूय च जाता महोद्यमाः।।8।।

देहाङ्गतया कामं प्रकृताः
चिन्तने भान्ति ता अनुत्तमाः।।9।।

इयमङ्गुलिपञ्चगलञ्जलिका
दैवज्ञानामपि हृद्यतमा।।10।।

पूर्वाह्णः 9.45
आमेरम्
7.7.2011 ई.

अनुत्तम लगती हैं वे!

यही तो हाथ की अद्‌भुत सुन्दरता है कि (उसकी) सभी अँगुलियाँ बराबर (एक जैसी) नहीं हैं।। 1।।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण **'तर्जनी'** प्रयुक्त होती है उच्चाटन, मारण तथा मोहन क्रियाओं में।। 2।।

सबसे छोटी **'कनिष्ठिका'** सदैव केवल गिनती की शुरुआत कराती है।। 3।।

सारी उँगलियों के बीच में स्थित तथा सबसे ऊँची **'मध्यमा'** करपल्लव (पल्लव-सरीखे हाथ) की शोभा बढाती है (शिखरभूत होने के कारण)।। 4।।

मनोरम अंगुलि **अनामिका** पूजादिकर्म में पवित्री को धारण करती है।। 5।।

(इन पाँचों में) जो प्रधानतम है वह 'अंगुष्ठा' तो उठते ही बलिष्ठ शत्रु को भी, तिनके के बराबर सिद्ध कर देती है।। 6।।

इनमें से कोई (विशिष्ट) एक ऐसी होती है जो ग्रहों को (वशीभूत करने वाली अप्सरा) तिलोत्तमा बन कर (विरुद्ध सूर्य, मंगल अथवा शनि को) अनुकूल बना लेती है।। 7।।

सचमुच, अलग-अलग तो ये अँगुलियाँ निष्क्रिय हैं। परन्तु यदि परस्पर मिल जायें (इकट्‌ठी हो जायें) तो महान् उद्यम (स्पर्धा) वाली बन जाती हैं।। 8।।

शरीर का अंग-मात्र होने के कारण भले ही वे **साधारण** प्रतीत होती हों। परन्तु उनकी समीक्षा की जाए तो वे विलक्षण ही सिद्ध होती हैं।। 9।।

यह अंगुलि-पञ्चक से जुड़ी गलज्जलिका (ग़ज़ल) ज्योतिषियों के लिए भी अतिशय प्रिय होगी।। 10।।

कृतिनोऽभिराजविहगाः

स्वमुखेन हन्त नित्यं मिथ्याप्रशस्तिगानम्
आजीवनं नु भवता विहितं स्वतः प्रमाणम्॥1॥

शेषस्य भूमिभारान्निश्चप्रचं द्विगुणितम्।
दुर्वहतरं तवाऽभूद् बन्धोऽभिमानमानम्॥2॥

निःश्वासमात्रकृत्यं झाञ्झश्च तत्प्रचारः
वन्ध्यश्श्रमो नु भवतां वन्द्यं भवाऽभियानम्॥3॥

क्व वदान्यताप्रसङ्गे कर्णोऽथवा दधीचिः।
क्व विभर्ति सोऽधमर्णो रघुरपि यशस्समानम्॥4॥

विटचेटपीठमर्दप्रतिहारनायकानाम्
नन्वभिनयैस्त्वमेको नयसि स्वयक्षगानम्॥5॥

अतिधातृ ते रजोऽभूदतिविष्णु चापि सत्त्वम्।
अतिरुद्रमेव दृष्टं लोकैस्तमोवितानम्॥6॥

धृतराष्ट्रताभ्रमे भो जनुषान्धतास्मृतिर्नो
सञ्जयमुखात्सहर्षं श्रुतमेव युद्धगानम्॥7॥

व्यर्थं तदिन्द्रजालं पुटपर्थिदेशिकानाम्
नीतं सहैव यन्नो स्वसुवर्णभृन्निधानम्॥8॥

हित्वाऽत्र चेत्समग्रं गन्तव्यमेकलेन
धिक्तर्हि लोभकीटान् तेषाञ्च धिग्विधानम्॥9॥

भाग्यशाली अभिराजविहग

सारी जिन्दगी आप, अपने ही प्रमाण से, अपने ही मुँह से (अपनी ही) मिथ्याप्रशस्ति (झूठी प्रशंसा) का गान नित्य करते रहे।। 1।।

हे बन्धो! आपके घमण्ड का भार (बोझ) निश्चित रूप से भगवान् शेष के (भी) भूमिभार की तुलना में दुगुना तथा दुर्वहतर (नढोया जा सकने योग्य) रहा।। 2।।

एक छोटी सी 'साँस के बराबर' **कार्य** और 'आँधी-बवण्डर' के बराबर होता था उसका **प्रचार!** वन्दनयोग्य था आपका श्रम और वन्दनयोग्य था आपका (जग नाथने का) अभियान।। 3।।

आपकी दानशीलता के सन्दर्भ में कहाँ टिक पाते थे कर्ण अथवा दधीचि? और वह आपका कर्जदार (सम्राट्) रघु भी आपके समान यश का भागीदार कहाँ बन पाता था।। 4।।

विट (दलाल) चेट (किङ्कर) पीठमर्द (उपनायक) प्रतिहार (द्वारपाल) तथा नायक (हीरो) सबके (समयानुकूल) अभिनयों से आप अकेले ही अपना **'यक्षगान'** पूर्ण करते थे।। 5।।

आपका रजोगुण विरञ्चि से भी अधिक था, आपकी सात्त्विकता भी विष्णु से अधिक थी। और समाज में आपकी तामसी वृत्ति का 'ताम-झाम' भी (प्रलयंकर) रुद्र को पछाड़ने वाला ही देखा।। 6।।

'धृतराष्ट्रता' के भ्रम में आपको अपनी **जन्मान्धता** की याद ही नहीं आती थी। आप तो युद्ध का गान (घटनाएँ) भी हर्षपूर्वक सञ्जय के मुँह से ही सुना करते थे।। 7।।

अब तो पुट्टपार्थी के महास्वामी (सत्यसाई बाबा) की वह (विभूति, मुद्रिका पैदा करने वाली) जादूगरी भी मुझे व्यर्थ ही प्रतीत हो रही है। जो कि वह अपना सुवर्ण-रत्न का खजाना (अपने) साथ ही नहीं ले जा सके।। 8।।

यदि सब कुछ यहीं छोड़कर 'अकेले' ही प्रयाण करना है तो फिर धिक्कार है लोभ के कीड़ों को और धिक्कार है उनके नाच-तमाशे को।। 9।।

न वृथाऽधिकारयुद्धं न जलान्नवासचिन्ता
कृतिनोऽभिराजविहगा मुक्त्वा यशोऽवमानम्॥10॥

अपराह्णः 1.30
शिमला 29.7.2011 ई.

(उनकी तुलना में तो) सौभाग्यशाली हैं अभिराज-राजेन्द्ररूपी पंछी, जो यश तथा अपमान–दोनों से अ-प्रभावित हैं। जिनका न कोई निरर्थक अधिकार-युद्ध है और न जिन्हें जल, अन्न तथा वास (घर) की कोई चिन्ता है।। 10।।

चातकोऽहम्

सरो वापिकां सागरं नैव याचे
ध्रिये स्वातिमेघाम्बुभिश्चातकोऽहम्।।1।।

इतोऽग्रे नताङ्घ्रि! त्वदीयोऽस्मि दासः
त्वदुद्वेजको नो वटुर्याचकोऽहम्।।2।।

न मेऽस्मिन्मरौ किञ्चिदूना प्रतिष्ठा
ज्वलत्पान्थबन्धुस्स शाखोटकोऽहम्।।3।।

ध्रुवं कण्टकेनैव निष्कर्ष्टुमर्हः
गभीरं निविष्टोऽपरः कण्टकोऽहम्।।4।

सदा बोधये सत्त्वमासीन्मदीयम्
शतं जायमानो बृहज्जातकोऽहम्।।5।।

अलं श्रावयित्वा व्यथानां कथां माम्
न मञ्चाभिनेता मृषा भावुकोऽहम्।।6।।

निजाऽस्तित्वसार्थक्यसिद्ध्यै यतिष्ये
बिभेमीशनेत्रान्न भो दर्पकोऽहम्।।7।।

ममाऽप्यस्ति सिंहीरतिप्रीतिबन्धः
वपुस्सम्पदा केवलं भीषकोऽहम्।।8।।

विभर्म्यल्पसत्यं श्रुतं सम्मतं वा
परीक्षस्व मां सम्यगाभाणकोऽहम्।।9।।

पूर्वाह्णः 9.40
पिप्पली, 23.7.2011

चातक हूँ

सरोवर, बावड़ी और समुद्र से (जल) याचना नहीं करता। पपीहा हूँ मैं! स्वाती के बादलों के जल से ही जीवित रहता हूँ।। 1।।

हे अवनताङ्गि! अब आज के बाद मैं तुम्हारा दास बन गया। तुम्हें उद्विग्न करने वाला ब्रह्मचारी नहीं, तुम्हारा याचक हूँ मैं।। 2।।

इस मरुभूमि में (भी) मेरी कुछ कम प्रतिष्ठा नहीं है। जलते-तपते राहगीरों का सुखदाता **शाखोटक** हूँ मैं।। 3।।

निश्चित रूप से (दूसरे किसी) काँटे से ही निकाला जा सकता हूँ। गहरे धँसा हुआ दूसरा कण्टक हूँ मैं।। 4।।

(अतीत जन्मों में भी) सदैव **बोधि** (ज्ञान) मात्र के लिए मेरा **सत्त्व** (मनोबल) था। सैंकड़ों बार जन्म लेने वाला बृहज्जातक (तथागत) हूँ मैं।। 5।।

व्यथाओं की रामकहानी मुझे सुनाना व्यर्थ है। मैं रंगमञ्च का अभिनेता तथा दिखावे का भावुक नहीं हूँ (सचमुच सुन कर टूट जाऊँगा)।। 6।।

अपने अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने के लिए प्रयत्न तो करूँगा ही। मैं शम्भु के (तृतीय) नेत्र में नहीं डरता। दर्पक (काम) हूँ मैं।। 7।।

(अरे भाई!) बस, शरीर-सम्पत्ति से ही मैं भीषक (विकराल) हूँ। अन्यथा मुझ में भी सिंही के प्रति रति का आकर्षण है।। 8।।

सुने गए अथवा मानने योग्य थोड़े-बहुत सत्य को तो धारण ही करता हूँ। मेरी परीक्षा करो अच्छी तरह ! अर्धसत्य (किंवदन्ती) हूँ मैं।। 9।।

समधिकं सार्थकं मन्ये

यदपि लब्धं तदेवाऽभून्निरर्थं त्वत्कृते न्यूनम्
परन्त्वात्मोपलब्धमहं समधिकं सार्थकं मन्ये॥1॥

कपिलदृष्ट्यग्निदग्धैः सगरपुत्रैः किं सहस्रैस्तैः?
श्रवणमन्धोपचितिधनिकं तमेकं जातकं मन्ये॥2॥

छुरीं खड्गं भुशुण्डीं परिचिनोमि, बिभेमि नो तेभ्यः
परं मधुकञ्चुकं गरलं वचस्ते घातकं मन्ये॥3॥

जहुस्सर्वेऽपि सङ्गं सौख्यहर्षाऽभ्युदयसम्मानाः
निरीहत्वं तदेकं सम्बलं त्रैकालिकं मन्ये॥4॥

यमधिरुह्योन्मदा कवितापिकी कूजितवती नित्यम्
तमात्मानं शरीरारण्यजातरसालकं मन्ये॥5॥

गतोऽसौ भास्कराचार्यो गतो वाचस्पतिर्मान्यः
तृतीयं साम्प्रतं यं कमपि नाम्नाऽज्ञातकं मन्ये॥6॥

व्यथार्ता संस्कृता वाणी यदा रोदिति, तदा कवयः
पतन्त्येवाऽश्रुकल्पा इत्यहं दृष्टान्तकं मन्ये॥7॥

प्रातः 8.45
ला.ब.रा.सं..वि. गेस्टहाउस
24.7.2011 ई.

समधिक सार्थक

जो कुछ मिला तुम्हें, वही तुम्हारे लिए निरर्थक तथा 'न्यून' (कम) बन गया। परन्तु अपने को जो कुछ मिला, मैं उसे ही समधिक (अपेक्षा से अधिक) तथा सार्थक (काम का) मानता हूँ।। 1।।

महर्षि कपिल की दृष्ट्यग्नि से भस्मीभूत राजा सगर के उन हजार पुत्रों से भी क्या फायदा? मैं तो अन्धे माँ-बाप की पूजा के धनी उस एक **श्रवणकुमार** को ही जातक मानता हूँ।। 2।।

छुरी, तलवार तथा बन्दूक को पहचानता हूँ मैं। उनसे डरता नहीं हूँ। परन्तु मैं शहद में लिपटी तुम्हारी विषाक्त वाणी को घातक मानता हूँ।। 3।।

सुख, हर्ष, अभ्युदय तथा सम्मान-सबने साथ छोड़ दिया! परन्तु साथ नहीं छोड़ा तो एक **'निरीहत्व'** (अनिच्छा) ने। एक उसी को मैं त्रैकालिक (सहचर) मानता हूँ।। 4।।

जिस पर बैठकर, मतवाली कवितारूपी कोकिला निरन्तर पिहकती रही उस 'आत्मा' को ही शरीररूपी अरण्य में उत्पन्न रसालक (आम्रवृक्ष) मानता हूँ।। 5।।

चले गए भाई **भास्कराचार्य!** अस्त हो गए माननीय **वाचस्पति** (उपाध्याय जी) भी।! तीसरा (जाने वाला) अब जो कोई भी हो सकता है जिसे नाम्ना अज्ञात मानता हूँ।। 6।।

व्यथा से आर्त हो कर संस्कृत भाषा जब-जब रोती है तभी-तभी अश्रुकल्प कविगण गिरते (दिवंगत होते) हैं, ऐसा ही दृष्टान्त स्वीकार करता हूँ मैं।। 7।।

वेपन्ते

द्रुमाः समीररयैः काननेषु वेपन्ते
जनाः शरीरभयैः प्राङ्गणेषु वेपन्ते॥1॥

दिने समर्च्य निशीथेषु लुण्टतिच्छत्रम्
द्विजानवेक्ष्य सुरा मन्दिरेषु वेपन्ते॥2॥

आत्मघाताय चितोऽयं ममाऽतिभक्तो वा
वन्दनीया इति स्रगर्पणेषु वेपन्ते॥3॥

विषं निपाय्य हरन्तेऽखिलन्नु यात्रायाम्
शठान् विहाय जनाः सज्जनेषु वेपन्ते॥4॥

प्रापयन्त्योऽद्य मुखं भक्ष्यपेयसामग्रीम्
अहो निजाङ्गुलयो भोजनेषु वेपन्ते॥5॥

साधुरस्यद्य परं द्रक्ष्यसे भविष्ये किम्?
इतीव चेतना हृत्स्पन्दनेषु वेपन्ते॥6॥

मूलमातङ्कतरोर्धर्म एव जातश्चेत्
तर्हि सद्भावनाः पैगम्बरेषु वेपन्ते॥7॥

ध्रुवं विषाक्ततरा मानवा इमेऽस्मत्तः
धियेति नम्रफणाश्चन्दनेषु वेपन्ते॥8॥

काव्यमञ्चेऽभिराजपादपद्धतिं श्रुत्वा
कवित्वदर्पहताः शंसनेषु वेपन्ते॥9॥

अपराह्णः 4.36
ला.ब.रा.सं..वि. गेस्टहाउस
24.7.2011 ई.

काँप रहे हैं!

काँप रहे हैं जंगलों में पेड़ हवा के झोकों से! काँप रहे हैं घर की अँगनाई में आदमी, आदमियों से।। 1।।

दिन में पूजा-पाठ करके, रात में लूट लेते हैं (सोने का) छत्र! ऐसे पुजारियों को देख काँप रहे हैं मन्दिरों में देवता।। 2।।

(प्रणामार्थ झुकने वाला) यह व्यक्ति 'आत्मघात' के लिए चुना गया है अथवा (सचमुच) मेरे प्रति श्रद्धालु है? माला पहनाने वाले के प्रति इस भावना के कारण काँप रहे हैं मेहमान।। 3।।

जहर खिला कर यात्रा में सब कुछ साफ किए दे रहे हैं। अब चोर-उचक्कों की बजाए ऐसे सज्जनों (सहयात्रियों) से लोग-बाग काँप रहे हैं।। 4।।

आश्चर्य है कि भक्ष्य (खाने) और पेय (पीने) सामग्री को मुँह तक पहुँचाने वाली अपनी अँगुलियाँ ही आज भोजन कराते काँप रही हैं (मिलावट के भय से) ।। 5।।

आज तो सही हो, परन्तु आगे 'क्या' दिखाई पड़ोगे? यह सोचकर चेतना भी हृदय की धड़कनों में काँप रही है।। 6।।

यदि धर्म ही जड़ है आतङ्करूपी वृक्ष का, तो फिर पैगम्बरों की सद्भावनाएँ भी डँबाडोल हो उठी हैं।। 7।।

निश्चित रूप से ये मानव हमसे भी कहीं अधिक विषैले हैं। इस विचार से फन झुकाए साँप भी चन्दनों में काँपने लगे हैं।। 8।।

काव्यमञ्च पर **'अभिराजराजेन्द्र'** की पगध्वनि सुनते ही कवित्व के घमण्ड में चूर (अपनी) वाहवाही को लेकर काँपने लगे हैं!।। 9।।

श्रुतं त्वत्तो मया बन्धो!!

अकुर्वन्नपि हितं कथमुत्तमर्णः स्याज्जनो लोके?
कलेयं शिक्षिताऽन्तेवासिना त्वत्तो मया बन्धो॥1॥

कथं निर्मीयते पाण्डित्यमधुकोषोऽद्‌भुतस्वादः
लवैर्ननु सर्वशास्त्राणां हृतं त्वत्तो मया बन्धो॥2॥

कथं स्वागतवचोभिर्धन्यवादैर्वा समारोहः
ध्रुवं क्रियतेऽद्रिसानुस्थः श्रुतं त्वत्तो मया बन्धो॥3॥

त्वमसि धाता त्वमसि शम्भुस्त्वमसि विष्णुश्च वैश्रवणः
इति स्तोत्रं भवद्रचितं वृतं त्वत्तो मया बन्धो॥4॥

खनित्वाऽगाधविस्तीर्णां वनं परितः कथं परिखाम्
दसति सिंहोऽसपत्नो ज्ञातमिति भवतो मया बन्धो॥5॥

लभन्तां ख्यातिमेरण्डाः शिलीन्ध्राश्चापि वर्धन्ताम्
वटस्तेष्वक्षतोऽस्मीति श्रितं त्वत्तो मया बन्धो॥6॥

दरिद्रग्रामनेतृत्वाद् वरेण्या सौधकिङ्करता
गृहीतो जीवनादर्शोऽप्ययं त्वत्तो मया बन्धो॥7॥

विचित्रा स्पर्शमणिता तावकी यद्यत् त्वया स्पृष्टम्
सुवर्णं तत्तदेवाऽभूदयो दृष्टं मया बन्धो॥8॥

न वा प्राक् नापि साम्प्रतिको न भविताऽग्रेऽपि कोऽप्यन्यः
भवत्सदृशो जगत्यामिति धृतं त्वत्तो मया बन्धो॥9॥

पूर्वाह्णः 11.33
ला.ब.रा.सं..वि. गेस्टहाउस
25.7.2011 ई.

भाई! तुमसे सुना

बिना किसी का भला किए भी, आदमी समाज में कैसे उत्तमर्ण (दबंग) बन सकता है, मेरे भाई! यह कला सीखी मैंने आपसे, आपकी संगति में रहते हुए।। 1।।

विलक्षण स्वाद वाला, **पाण्डित्य का मधुकोष** कैसे बनाया जाता है—समस्त शास्त्रों की बूँदों को इकट्ठा करके (जिस पाण्डित्य में उन शास्त्रों की गिनती मात्र है, गहराई नहीं) मेरे भाई! यह मैंने आपसे ही आत्मसात् किया ।। 2।।

(मात्र) स्वागत-वचनों अथवा (लच्छेदार) धन्यवाद-ज्ञापनों से कैसे समारोह को पहाड़ की चोटी तक पहुँचा दिया जाता है—यह मैंने आपसे ही सुना।। 3।।

आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही देवाधिदेव शिव हैं और आप ही (साक्षात्) नारायण हैं, कुबेर हैं! आप द्वारा रचे गए इस स्तोत्र को, मेरे भाई! मैंने आपसे ही प्राप्त किया।। 4।।

अपने जंगल के चारों ओर गहरी तथा विस्तृत (चौड़ी) खाई खोद कर कैसे बबर शेर 'अजातशत्रु' बन कर बिहार करता है यह रहस्य, मेरे भाई! मैंने आपसे ही जाना।। 5।।

(मेरे चारों ओर) एरण्ड-तरु विकसित होते रहें, कुकुरमुत्ते भी फलते-फूलते रहें (उनसे भला मेरी क्या हानि?) बस, उनके बीच मैं वटवृक्ष बना रहूँ! यह सोच मैंने आपसे ही पाई मेरे भाई।। 6।।

दलिद्दरों के गाँव का मुखिया बनने से कहीं अच्छी है **हवेली की चाकरी!** यह जीवन-आदर्श भी मेरे भैया! मैंने आपसे ही ग्रहण किया।। 7।।

अद्भुत पारसमणि थे आप कि जिस-जिस लोहे (कुपात्र) को आपने छू दिया, वही-वही सुवर्ण बन गया। मेरे भाई! मैंने स्वयं यह देखा।।8।।

आप जैसा इस धरित्री पर न कोई और पहले हुआ, न इस समय है और न ही आगे कभी होने को है। मेरे भाई! यह मेरा दृढ़ विश्वास है।। 9।।

स्वीयभालं न भिन्धि

अलं भिक्षया, तत्कपालं न भिन्धि
अलं सेचनैरालवालं न भिन्धि॥1॥

न माकन्दतुल्यं फलं स्वादु हेतो-
रिति क्षोभितः प्रांशुतालं न भिन्धि॥2॥

लिपिर्वैधसी नाऽनुकूलेति मत्वा
समुद्वेजितस्स्वीयभालं न भिन्धि॥3॥

भवन्त्वेव चेन्मद्यपेऽनल्पदोषाः
कृतं हालया पीतहालं न भिन्धि॥4॥

गृहाणि क्वचिच्चापि शक्यानि कर्तुम्
प्रकृत्योर्वरं हन्त मालं न भिन्धि॥5॥

क्व खर्वश्शशः क्वाद्रितुल्यो गजेन्द्रः?
निकृष्टार्थसिद्ध्यै विशालं न भिन्धि॥6॥

कवेर्निर्मितौ दृश्यते सत्यमेतत्
पयोऽद्भ्योऽनवाप्तुं मरालं न भिन्धि॥7॥

बहिस्साम्यमञ्चन्न सर्वं समानम्
मनश्शैलबुद्ध्या प्रवालं न भिन्धि॥8॥

न फुल्लन्ति मूले क्षुपा वारिजानाम्
ततो वच्मि बन्धो! मृणालं न भिन्धि॥9॥

अपराह्णः 6.07
नीलगगन-होटल, 27.7.11
जनकपुरी, दिल्ली-58

अपना माथा मत फोड़ो

भीख मत दो तो (कम से कम) भिक्षा-कपाल तो मत तोड़ो। पेड़ को भले न सींचो पर उसका थाला तो न बिगाड़ो।। 1।।

आम-जैसा स्वादिष्ट फल नहीं देता, मात्र इस विचार से क्षुब्ध होकर, ऊँचे ताड़-वृक्ष को तो मत काटो।। 2।।

विधाता के द्वारा अंकित (भाग्य) लिपि अनुकूल नहीं है ऐसा मान, समुद्वेजित (परेशान) होकर अपना माथा तो मत फोड़ो।। 3।।

भले ही पियक्कड़ (शराबी) में ढेर सारे दोष होते हों। शराब को लात मारो, परन्तु शराब पिए आदमी को तो मत पीटो।। 4।।

घर तो कहीं भी बनाए जा सकते हैं। परन्तु (घर बनाने के लिए) स्वभावतः उपजाऊ खेती-योग्य (माल) जमीन को तो बरबाद मत करो।। 5।।

कहाँ मुट्ठी भर का खरगोश और कहाँ पहाड़ सरीखा भारी-भरकम हाथी? निकृष्ट (छोटी) अर्थ-सिद्धि के लिए विशाल वस्तु का नाश तो मत करो।। 6।।

यह सव तो (मात्र) कवि की सृष्टि अर्थात् कविता में विद्यमान है। अब पानी से दूध को अलग न कर पाने के कारण किसी हंस को तो मत मार डालो।। 7।।

बाहरी तौर पर एक जैसा दीखने के बाबजूद, सब एक जैसे नहीं होते। मैंनसिल समझ कर मूँगे को तो मत पीस डालो।। 8।।

कमलों के पौधे जड़ में नहीं फूला करते (टहनियों में ही फूलते हैं) इसीलिए कहता हूँ बन्धुवर्य! कमलनाल को नष्ट मत करो।। 9।।

नो मया निवेद्यन्ते

न जातु मौकुलयः कोकिलेषु गण्यन्ते
रूपसाम्येऽपि च ते दुःस्वरेण भिद्यन्ते॥1॥

चारुतां यानि वितन्वन्ति योषिदास्यानां
व्यञ्जने जातु न बिम्बानि तानि कल्प्यन्ते॥2॥

दन्तयोर्हन्त महिम्ना ययोर्बभौ दन्ती
तरुत्वचो न च ताभ्यां कदापि चर्व्यन्ते॥3॥

गृहेऽस्ति तस्य हलं काञ्चनं मयाऽवगतम्
परन्तु मालभुवस्तेन नैव कृष्यन्ते॥4॥

सन्ति दुःखानि ममाऽप्यङ्ग! मर्मभिन्दि परं
यस्य कस्यापि पुरो नो मया निवेद्यन्ते॥5॥

जीवने यद्धि मयाऽलोकितं, श्रुतं सोढम्
ज्ञायते तेन हि किं बन्धवस्समीहन्ते॥6॥

काममत्राऽस्तु विचारास्पदं नु मद्वृत्तम्।
पुरे तु माधवने तान्यहोऽभिनीयन्ते॥7॥

नृपोऽस्ति को न यशो यस्य दोषधूसरितम्
यशांसि किन्तु कवीनां न जातु जीर्यन्ते॥8॥

रात्रौ 8.10 वादने
अहमदाबाद-एयरपोर्ट
7.9.2011 ई.

मैं दुखड़ा रोता नहीं

कौबों की गिनती कोकिलों में नहीं की जाती है। रूप की समानता होने पर भी वे कौवे (अपने) कर्कश-स्वर के कारण अलग पहचान में आ जाते हैं।। 1।।

जो रमणी-मुख (अधर) की सुन्दरता का प्रतिमान बनते हैं वे बिम्बफल (रक्तवर्ण के कुन्दरु) भी (तिक्ततावश) पकवान में शामिल नहीं किए जाते।। 2।।

जिन दो दाँतों की महिमा से दन्ती (गजराज) की शोभा बढ़ती है उन्हीं दाँतों से पेड़ की छालें कभी भी चबाई नहीं जातीं (चबाने वाले दाँत अन्य होते हैं)।। 3।।

उसके घर में सोने का हल है, मैंने भी सुना है। परन्तु उससे पलिहर खेत की जुताई नहीं ही की जाती।। 4।।

प्रियवर! मेरे भी मर्म भेद देने वाले (अनेक) दु:ख हैं। परन्तु जिस किसी के आगे वे मेरे द्वारा व्यक्त नहीं किए जाते।। 5।।

मैंने जिन्दगी में जो कुछ भी देखा, सुना और सहा, उससे ज्ञात हो जाता है कि (अपने) बन्धुओं की मंशा क्या होती है।। 6।।

भले ही इस धराधाम (संसार) में मेरा आचरण विचार-विमर्श का विषय हो। परन्तु देवराज इन्द्र के नगर अर्थात् स्वर्ग में तो उसका अभिनय ही किया जाएगा (अर्थात् वे अनुकरणीय माने जाएँगे)।। 7।।

ऐसा कोई राजा नहीं हुआ कि जिसका यश दोषों से मटमैला न हुआ हो। परन्तु कवियों की ही कीर्तियाँ है कि कभी भी जीर्ण (बदरंग) नहीं होतीं।। 8।।

तव मानसे किं वर्तते?

पार्श्वे स्थितोऽपि न भाषसे, तव मानसे किं वर्तते?
भावं कथं न प्रकाशसे तव मानसे किं वर्तते॥1॥

वर्षति जलं करकाचयं वा पातयति ननु केवलम्
अम्बुदघटाऽप्याभासयति, तव मानसे किं वर्तते॥2॥

वातोऽपि वात्यतिमन्थरं, समुपैति वा झञ्झास्पदम्
स हि घोषयति निजरंहसा, तव मानसे किं वर्तते॥3॥

समवेक्ष्य पार्वणचन्दिरं नोत्कण्ठते किं वारिधिः?
वेत्त्येव मुग्धोऽऽप्याशयं, तव मानसे किं वर्तते॥4॥

ननु वाञ्छताऽपि सुमेन निह्नोतुं न गन्धश्शक्यते
स बलाद्बहिस्सासर्यते, तव मानसे किं वर्तते॥5॥

संवृतमुखत्वे को गुणस्तस्माद्रवावुदितेम्बरे
उत्पलवनं भवति स्फुटं, तव मानसे किं वर्तते॥6॥

जगदीशलीलाप्रकटनं ननु सृष्टिरपि कथिता बुधैः
प्रलयश्च संवरणं मतं, तव मानसे किं वर्तते॥7॥

तस्मान्मुखं व्यादेहि, लोचनयुगलमुन्मीलय सखे!
आत्मा न मत्तो निह्नुतां, तव मानसे किं वर्तते॥8॥

लुधियाना, प्रातः 10 बजे
10.9.2011 ई.

क्या है तुम्हारे मन में?

पास बैठे हुए भी (कुछ) बोल नहीं रहे हो? क्या है तुम्हारे मन में? अपना अभिप्राय व्यक्त क्यों नहीं करते? क्या है तुम्हारे मन में।। 1।।

घनघटा भी संकेत दे ही देती है। वह या तो जलवृष्टि करती है या फिर केवल ओले गिराती है। परन्तु तुम्हारे मन में क्या है।। 2।।

हवा भी या तो अत्यन्त मन्द गति से बहती है या फिर आँधी–बवण्डर का रूप ले लेती है। इन दोनों ही स्थितियों की घोषणा वह अपने वेगमात्र से कर देती है (परन्तु) तुम्हारे मन में क्या है।। 3।।

पूनम का चाँद देखकर क्या सागर उत्कण्ठित (उच्छ्वसित) नहीं हो उठता? भोला–भाला व्यक्ति भी (दूसरे के) आशय (मनोभाव) को ताड़ लेता है (परन्तु) तुम्हारे मन में क्या है।। 4।।

सचमुच, चाह कर भी पुष्प द्वारा (उसकी) गन्ध छिपाई नहीं जा सकती। वह तो बरजोरी बाहर निकल ही आती है (परन्तु) तुम्हारे मन में क्या है (कि बाहर नहीं निकल रहा)।। 5।।

मुँहमुन्ना (मुद्रितानन) बने रहने में भला क्या गुण है? इसीलिए, आकाश में (प्रातः) सूर्य के उदित होते ही श्वेत कमल का वन खिल उठता है (परन्तु) तुम्हारे मन में क्या है (कि तुम चुप्पी साधे हो)।। 6।।

विद्वज्जनों ने इस सृष्टि को भी परमेश्वर की लीला का प्रकाशन–मात्र माना है और प्रलय को (उसी लीला का) संवरण! तुम्हारे मन में क्या है कि व्यक्त नहीं हो रहा?।। 7।।

इसलिए सखे! मुँह खोलो और नयन–युगल को भी उन्मीलित करो। अपने को छिपाओ नहीं मुझ से (बताओ कि) क्या है तुम्हारे मन में।। 8।।

लक्षयेऽहम्

न दुःखस्यावसानं लक्षयेऽहम्
तदेवैकं निदानं लक्षयेऽहम्॥1॥

प्रपञ्चस्सर्व एवाऽस्तित्वमूलः
निरस्तित्वे समानं लक्षयेऽहम्॥2॥

ध्रुवं दुःखे सुखानां भ्रान्तिरुत्था
हतायां समाधानं लक्षयेऽहम्॥3॥

विरेचकमेकलं दुःखं मलानाम्
ततस्तेनाऽत्ममानं लक्षयेऽहम्॥4॥

न जाने किल, कदा सुखितोऽहमासम्?
न वा तस्य प्रमाणं लक्षयेऽहम्॥5॥

अपूर्णेच्छाफलं भवतीह दुःखम्
परं तेनैव त्राणं लक्षयेऽहम्॥6॥

सुखैरपि हन्त चिन्ता जर्जरा नो
नृणां दुःखं निधानं लक्षयेऽहम्॥7॥

अहो यदवाप्य नो वञ्चनभयं स्यात्
वयस्यं तत् पुराणं लक्षयेऽहम्॥8॥

सहारनपुरम्, 12.30 मध्याह्नः
10.9.2011 ई.

देख रहा हूँ

मैं नहीं देख रहा दु:ख की समाप्ति (प्रत्युत) उसी को (समस्त रोगों का) एकमात्र निदान (औषधि, उपचार) पा रहा हूँ।। 1।।

सारे प्रपञ्चों (समस्याओं) की जड़ है (प्रपञ्चों का) अस्तित्व! अस्तित्वहीनता (अविद्यमानता) में विषमता कहाँ? (फिर तो सर्वत्र साम्य ही साम्य है)।। 2।।

निश्चित रूप से दु:ख में ही पैदा होती है सुखों की भ्रान्ति! उस भ्रान्ति के समाप्त होते ही समाधान मिल जाता है (कि यह सुख नहीं, मूलत: दु:ख ही था)।। 3।।

सारे दोषों का विरेचक एकमात्र दु:ख ही होता है। इसीलिए मैं उस दु:ख से ही अपना प्रतिनिधित्व (पहचान) मानता हूँ।। 4।।

सचमुच नहीं जानता मैं कि कब सुखी हुआ था? उसका कोई प्रमाण भी नहीं पाता मैं।। 5।।

दु:ख, अपूर्ण आकांक्षाओं का फल (परिणाम) मात्र होता है। परन्तु उसी में मैं आज (सुरक्षा) भी देखता हूँ।। 6।।

आश्चर्य है कि सुखों की प्राप्ति से भी चिन्ताएँ जर्जर (जीर्ण-शीर्ण) नहीं हो पातीं। मैं तो दु:ख को ही मनुष्यों का रत्नकोष (खजाना) मानता हूँ।। 7।।

वाह, जिसे प्राप्त कर उसके खोने का (कोई) भय न हो! उस (दु:ख) को तो मैं पुराना जिगरी दोस्त ही मानता हूँ। 8।।

कस्मिन् युगेऽस्मि सञ्जातः?

हन्त कस्मिन् युगेऽस्मि सञ्जातः
दृश्यते सर्वतोऽपि संघातः॥1॥

भानुरद्याऽप्युदेति पूर्वस्याम्
किन्तु नैवास्ति पूर्ववत्प्रातः॥2॥

वाचि सिक्त्वा रसं लपन्ति जनाः
मानसे किन्तु वल्गते घातः॥3॥

रक्तसम्बन्ध एव सर्वेषाम्
कालकूटोऽमृतादहो जातः॥4॥

का नु चर्चाऽद्य वंशशीलादेः
सर्व एव स्वयं समाम्नातः॥5॥

लोकरागात्पिता तथा न मतः!
लोकशोकात्सुतो यथा ख्यातः॥6॥

मञ्जितं भो ध्रुवं कबीरकुलम्
यत्कमालस्सुतोऽस्ति सञ्जातः॥7॥

राजनीतिस्तु सन्धिनी धेनुः
राजनेताऽप्यसौ वृषो जातः॥8॥

मन्दिरे-मस्जिदे प्रतिस्पर्धा
कर्णसंस्फोटको ध्वनिर्ध्मातः॥9॥

नईदिल्ली रे. स्टेशन
रात्रिः 7.42
15.9.2011

किस जमाने में पैदा हो गया?

हे प्रभो! किस युग (जमाने) में पैदा हो गया हूँ मैं? चारों ओर मुठभेड़ ही दीख रही हैं।। 1।।

सूर्य तो आज भी पूर्व (दिशा) में ही उदित हो रहा है परन्तु **'भोर'** पहले जैसी नहीं है।। 2।।

ज़बान में तो शक्कर लपेट कर बोलते हैं लोग! परन्तु मन में (उनके) उछाल मारता रहता है षड्यन्त्र।। 3।।

रक्त-सम्बन्ध ही सबके लिए (आज) **अमृत से कालकूट** बन गया है।। 4।।

आज भला वंश और शील आदि की चर्चा कैसी? सब लोग अपने ही हुनर (हत्या, चोरी, दुराचार, अपहरणादि) से जगजाहिर हो रहे हैं।। 5।।

समाज पर सदा निछावर रहने के कारण पिताश्री भी उतने मानिन्द नहीं बन पाए जितने नामी-गरामी बन गए पुत्र जी, **समाज का जीना हराम कर**।। 6।।

साधो! निश्चय ही **बूड़ा वंश कबीर का,** क्योंकि **उपजा पूत कमाल**।। 7।।

राजनीति तो बन गई है गरमाई हुई गाय और राजनेता भी बन गया है छुट्टा साँड।। 8।।

प्रतिस्पर्धा (लागडाँट) चल रही है मन्दिर और मस्जिद के बीच! कान फोड़ने वाली (कीर्तन और अजान की) ध्वनियाँ उठ रही हैं।।9।।

विभाति नदी

प्रावृषि प्लाविताऽम्भसामोघैः
मानिनी नायिका विभाति नदी॥1॥

पातयन्ती तटेऽम्बुधाराभिः
क्वापि कूलङ्कषा विभाति नदी॥2॥

शान्तशान्ताऽमला च हेमन्ते
हन्त कान्तार्थिनी विभाति नदी॥3॥

क्षीणतोया कृशा च नैदाघे
विप्रलब्धाऽकुला विभाति नदी॥4॥

छिन्नधाराऽशु सङ्कुचत्पुलिना
खण्डिता नायिका विभाति नदी॥5॥

वर्षया चाऽप्यकालजलदानाम्
सङ्गमोत्कण्ठिता विभाति नदी॥6॥

सागरं दूरसंस्थमास्वङ्क्तुम्
साभिसाराङ्गना विभाति नदी॥7॥

चाटुरावैर्विहङ्गसङ्घानाम्
आलपन्ती कलं विभाति नदी॥8॥

सान्द्रमाच्छादिता चिताधूमैः
घोरतपसि स्थिता विभाति नदी॥9॥

शिमला-आवासः
रात्रिः 8.42
2.10.2011 ई.

नदी

पावस में जलराशियों की बाढ़ से बह निकली नदी **मानिनी नायिका** सी लगने लगी है।। 1।।

जल की धाराओं से कगारों को भसकाती हुई कहीं-कहीं कूलङ्कषा (कुलटा) सी प्रतीत हो रही है नदी।। 2।।

हेमन्त ऋतु में अतिशय शान्त (मन्दवेगवाली) तथा निर्मल नदी कान्तार्थिनी (**उत्कण्ठिता** नायिका) सी प्रतीत हो रही है।। 3।।

ग्रीष्म ऋतु में अल्प जल वाली तथा दुबली-पतली नदी आकुल एवं **विप्रलब्धा** (नायिका) बन गई है।। 4।।

(ग्रीष्मान्त में) टूटी हुई जलधारा वाली तथा सँकरे तटों वाली नदी **खण्डिता** नायिका सी लगने लगी है।। 5।।

अकाल-जलदों (अनवसर, सहसा उमड़े बादलों) की (घोर) वृष्टि से **संगमोत्कण्ठिता** (समुद्र से मिलने के लिए उतावली) प्रतीत हो रही है नदी।। 6।।

दूर-स्थित सागर से गलबाँही करने के लिए **अभिसारिका** नायिका बन चली है नदी।। 7।।

विहंग-समूहों के मस्ती भरे कलरव से मधुर-मधुर बतियाती सी प्रतीत हो रही है नदी।। 8।।

(जलती) चिताओं के धुएँ से, सघनतया आच्छादित नदी घोर तपस्या में डूबी सी दीख रही है।। 9।।

सन्तः कियन्तः?

विरक्तिं परीधानैर्नाटयन्तः
अहो परमार्थतस्सन्तः कियन्तः॥1॥

ज्वलसि चेज्ज्वल दवैः कान्तारकल्पः
परं मा ज्वल जलधिरिव निभृतमन्तः॥2॥

किमप्युपकर्तुमेव समागतस्त्वम्
परं जातोऽसि बन्धो! क्विप् कृदन्तः॥3॥

सपत्नाः किन्न बन्धनशृङ्खलास्ते?
सृजन्तो मलचयं कटुकं क्वणन्तः॥4॥

न तेषां हृदि किमास्ते रोदनोत्सः?
वृथा ये सदसि दृश्यन्ते हसन्तः॥5॥

कथं व्यसनाद् विरक्तिं लप्स्यसे त्वम्?
ध्रुवं जातोऽसि धातुस्त्वं यङन्तः॥6॥

गृहाणाशयसुखं मद्वाचिकानाम्
बहिः परुषं परं यन्मधुरमन्तः॥7॥

न खल्विह पापवन्तो गर्हणीयाः
समधिकं पापिनः पापं श्रयन्तः॥8॥

कमप्येकं समाश्रय सानु रोढुम्
प्रकारोऽस्त्यन्यथा वाचामनन्तः॥9॥

बहरोडम्, शाम 4 बजे
11.10.2011 ई.

सन्त कितने?

गेरुवे वस्त्रों भर से बैराग्य का नाटक करने वाले, वास्तविक (सचमुच के) सन्त कितने हैं।। 1।।

यदि जल रहे हो तो जंगल की तरह दावाग्नियों से जलो (कि सब कुछ राख बन जाए) परन्तु समुद्र की तरह चुपचाप भीतर ही भीतर (वाडवाग्नि से) मत जलो (कि कोई देखे ही न)।। 2।।

कुछ उपकार ही करने के लिए आए थे तुम! परन्तु मेरे भाई! बन गए **कृदन्त क्विप् प्रत्यय** (जो अपना तथा अपने आश्रय-दोनों का नाश कर देता है)।। 3।।

वे वैरी-गण क्या बाँधने वाली (लोहे की) हथकड़ी और बेड़ी जैसे नहीं हैं जो उगलती रहती है जंग और कनफोड़ ध्वनि! (बकवास)।। 4।।

क्या उनके हृदय में विलाप का जल-स्रोत (उद्गम) नहीं होता जो सभाओं में सूखी हँसी हँसते रहते हें।। 5।।

वासना (गन्दीआदतों) से विरक्ति तुम कैसे प्राप्त करोगे? तुम तो निश्चय ही **यङन्तधातु** बन कर पैदा हुए हो (जो सातत्य का प्रतीक है)।। 6।।

मेरे वचनों में अन्तर्निहित अभिप्राय के आनन्द-मात्र को ग्रहण करो जो ऊपर से तो कठोर है परन्तु भीतर से परम मधुर है।। 7।।

इस संसार में, पाप-पंक में डूबे लोग निन्दनीय नहीं हैं। **सबसे बड़े पापी तो वे हैं जो पपियों का सहारा लेते हैं**।। 8।।

(कवित्व के) शिखर पर चढ़ने के लिए किसी एक का दामन थाम लो। अन्यथा वाणी के तो अनन्त प्रकार (भेद) हैं।। 9।।

वैराग्यनाटकेन

पल्वलकुलीरकल्पः सङ्कटयुतोऽहमासम्
विहरामि सौख्यसिन्धौ वैराग्यनाटकेन॥1॥

मारवनिदाघतप्तो योऽहं मुमूर्षुरासम्
सेवेऽधुना सुरद्रुं वैराग्यनाटकेन॥2॥

यस्याऽभवन्न सुलभं हा तक्रमपि कदाचित्
अमृतं पिबामि नित्यं वैराग्यनाटकेन॥3॥

आरोपिता न यैका शीर्षे सुवर्णमुद्रा
पादेन ताः स्पृशामि वैराग्यनाटकेन॥4॥

रम्भोर्वशीघृताचीमेनादिषोडशीनाम्
रूपासवं पिबामि वैराग्यनाटकेन॥5॥

कीदृशमहो विधातर्बल्कलपटेन्द्रजालम्!
साधितमहो न किं किं वैराग्यनाटकेन॥6॥

आयुक्तमुपायुक्तं धिक् शिक्षकं नयज्ञम्
तिष्ठामि सर्वशीर्षे वैराग्यनाटकेन॥7॥

अद्यापि हृत्कुटीरे सान्द्रान्धकारराज्यम्
रविसोदरोऽस्मि जातो वैराग्यनाटकेन॥8॥

ब्रह्मणि मनोऽनुरक्तं नो वेति वेत्ति को वा?
वसनं परन्तु रक्तं वैराग्यनाटकेन॥9॥

चिरमाश्रिता मयाऽसौ प्रीत्याऽभिराजपदवी
तन्नायकोऽस्मि सम्प्रति वैराग्यनाटकेन॥10॥

रात्रौ त्रि-वादने, 31.10.11
शिमला

वैराग्यनाटक

गड़ही के केंकड़े की तरह संकटापन्न था मैं (कभी भी शिकारी की गिरफ्त में आ जाता) परन्तु (अब) सुख के समुद्र में विहार कर रहा हूँ–आज, मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।। 1।।

मरुभूमि की गर्मी से सन्तप्त जो मैं मरने-मरने को था अब वही मैं कल्पतरु की छाँव में हूँ–मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।। 2।।

हाय, जिसको कभी मट्ठा (छाछ) भी मयस्सर नहीं हो पाया वही मैं (अब) नित्य ही अमृत पी रहा हूँ–मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।।3।।

जिस एक भी अशर्फी (स्वर्णमुद्रा) को कभी **माथे** नहीं लगा पाया, उन्हीं को **पैर से** छू रहा हूँ–मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।। 4।।

रम्भा, उर्वशी, धृताची और मेनका आदि (भक्त) षोडशियों के रूपरस का पान कर रहा हूँ–मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।। 5।।

हे विधाता! आश्चर्य है! कैसा इन्द्रजाल (जादूगरी) है इस बल्कल (भगवे) वस्त्र का? मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर मैंने क्या-क्या नहीं सिद्ध कर लिया।। 6।।

धिक्कार है आयुक्त (कमिश्नर) उपायुक्त (जिलाधीश) शिक्षक (प्रोफेसर) तथा नयज्ञ (राजनेता) को! इन सबके सिर पर सवार हूँ मैं–मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।। 7।।

(मेरे) हृदयरूपी झोपड़ी में तो आज भी सघन अन्धकार (माया-मोह) का ही राज्य है। परन्तु मैं बन गया हूँ **सूरज का सगा भाई**–मात्र गेरुवा वस्त्र धारण कर।। 8।।

परब्रह्म में मन अनुरक्त है अथवा नहीं? भला कौन जानता है (इसे) परन्तु वस्त्र तो मेरे रक्त (रक्तवर्ण0 हैं ही! मात्र गेरुवे वस्त्र धारण कर।।9।।

चिरकाल तक तो मैं प्रीतिपूर्वक वही अभिराज (राजेन्द्र) की राह चलता रहा। परन्तु अब बन गया हूँ उनका (भी) बाँस–मात्र गेरुवे वस्त्र धारण कर।। 10।।

नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्

न जातो मातृगर्भादेव तादृक्त्वं, यथा भासि
कृतो येनाऽन्यथा बन्धो! नमस्तस्मै, नमस्तुभ्यम्॥1॥

अकारणमेव विद्विक्षे सुचरितान्युत्तमर्णानाम्
यदनुकम्पामहिम्ना त्वं, नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥2॥

परेषामर्थसिद्ध्यै भोः प्रयतसे कोटिबुद्धिस्सन्
वृणीषे कल्मषाध्वानं नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥3॥

सती ते गेहिनी, कन्या सुचरिता हन्त जारिण्यौ
कलत्रेऽन्यस्य सक्तस्त्वं, नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥4॥

पिशाचस्त्वयि समाविष्टो यथारुचितं भुनक्ति त्वाम्
कृतस्तेनैव निरयेऽस्मिन्, नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥5॥

यथाऽऽरोहन्नरस्सोपानपङ्क्तिं सौधमातनुते
तया निपतंस्तथैति भुवं, नमस्तस्यै नमस्तुभ्यम्॥6॥

यदार्द्रतयोपरूढस्त्वं वियति, ननु धूमतामेत्य
निरग्नितयाऽभवो नष्टो, नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥7॥

उपाध्यायेन कार्तज्ञ्यं मनागपि शिक्षितं नो ते
कृतघ्नो येन जातस्त्वं, नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥8॥

विहायाऽन्यं समालम्बस्व मोक्षायात्मनाऽऽत्मानम्
समुद्धारोऽधुनाऽप्याप्यो नमस्तस्मै नमस्तुभ्यम्॥9॥

रात्रौ सार्धत्रिवादने 31.10.11

शिमला

नमन उन्हें, नमन तुम्हें

तुम (आज) जैसे दिखाई पड़ रहे हो, माँ के गर्भ से वैसे नहीं पैदा हुए थे। मेरे भाई! जिसने तुम्हें **कुछ का कुछ** बना दिया है—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 1।।

महापुरुषों के शोभन आचरणों से, बिना कारण तुम द्वेष करते हो। जिनकी कृपा की महिमा से ऐसा हो रहा है—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 2।।

दूसरों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए तुम कोटि-बुद्धि बन कर प्रयत्न करते हो। कोई भी पापमार्ग अपना लेते हो—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 3।।

तुम्हारी पतिव्रता पत्नी और शोभन चरित्र वाली बेटी! ओफ् दोनों ही दुश्चरित्र बन गई। और तुम आसक्त हो दूसरे की घरवाली में—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 4।।

तुम्हारे ऊपर सवार है पिशाच! अपनी इच्छा के अनुकूल तुम्हें भोग रहा है। इस नरक में तुम उसी के द्वारा धकेले गए हो—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 5।।

जैसे सीढ़ियाँ चढ़ते ही चढ़ते आदमी महल की अटारी पर पहुँच जाता है वैसे ही (अटारी से) भहरा कर जमीन पर भी गिर पड़ता है। नमस्कार है उसे (चढ़ने वाले को) नमस्कार है (गिरने वाले) तुम्हें।।6।।

(इन्धन-सरीखे) जिस व्यक्ति की नरमी से धुआँ बनकर तुम आकाश तक जा चढ़े, बही तुम अग्निविहीन होने के कारण नष्ट भी हो गए—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 7।।

(तुम्हारे) उपाध्याय (गुरु) ने जरा सी भी कृतज्ञता की शिक्षा तुम्हें नहीं दी जिसके कारण तुम कृतघ्न बन गए—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 8।।

(मेरी मानो) मोक्ष पाने के लिए, दूसरे की वैशाखी छोड़, अपने से ही अपने को सहारा दो। अभी भी समुद्धार सुलभ हो सकता है—नमस्कार है उसे, नमस्कार है तुम्हें।। 9।।

विहितं मया वागर्पणं भोः

मयूखाः सत्त्वरं प्रविशन्तु गेहे
मया प्रोद्घाटितं वातायनम्भोः॥1॥

घना वर्षन्तु धारासारगत्या
मया सुदृढीकृतं तृणछादनम्भोः॥2॥

जनकजां परिणयेद्रामोऽभिरामः
मया प्रारब्धमिह रामायणम्भोः॥3॥

अकारणवैरिणो लषितं चरन्ताम्
मया कुलिशीकृतं हृदयाङ्गणम्भोः॥4॥

सदा संलक्ष्यते परितो मुकुन्दः
प्रयुक्तं तादृशं नयनाञ्जनम्भोः॥5॥

हितं मे को नु, विधुना पार्वणेन?
निपीयत एव यत्तवकाऽननम्भोः॥6॥

मनो रमते मदीयं निष्प्रयत्नं
भवेन्ननु मन्दिरं वा काननम्भोः॥7॥

यदासीद् ह्यस्तनं मे वर्तमानं
भवत्यधुना तदेव पुरातनम्भोः॥8॥

हविष्यीकृत्य जीवनमेव बन्धो!
हुतं विहितं मया वागर्पणम्भोः॥9॥

रात्रिः 11.05
संस्कृतभवनम्, लखनऊ
5.11.11 ई.

किया मैने वागर्पण

(सूर्य की) किरणें वेगपूर्वक (मेरे) घर में प्रविष्ट हों। बन्धुओं! मैंने खिड़की खोल रखी है।। 1।।

बादल धारासार-गति से बरसें! बन्धुओ! मैंने (अपनी) घास-फूस की छाजन मजबूत बना ली है।। 2।।

अभिराम (दशरथनन्दन) राम जानकी से करें विवाह! बन्धुओं।! मैंने **रामायण का पारायण** प्रारम्भ कर दिया है (और विवाह-प्रसंग आने ही वाला है)।। 3।।

अकारण वैरी-गण मन की मुराद पूरी कर लें। बन्धुओ! मैंने हृदय के आँगन को वज्र (कठोर) बना लिया है।। 4।।

(अपने) चारों ओर सदैव मुकुन्द कृष्ण ही दीखते हैं। बन्धुओ! मैंने आँखों में ऐसा अञ्जन लगा लिया है।। 5।।

पूनम के चाँद से (अब) मेरा क्या भला होने को है? मैं तो बस, तुम्हारे मुख-चन्द्र को बिसूर रहा हूँ (और तृप्त हूँ)।। 6।।

बिना किसी प्रयत्न के ही मेरा मन रम जाता है। सचमुच, चाहे वह कोई (देव) मन्दिर हो अथवा (निर्जन) कानन!।। 7।।

कल का जो मेरा **वर्तमान** था, बन्धुओ! वही अब **'पुरातन'** बन गया है।।8।।

मेरे भाइयों! जिन्दगी को ही हविष्यान्न बना कर मैंने हवन कर दिया और उसे समर्पित कर दिया माँ शारदा को।। 9।।

को नु रोद्धुं क्षमः?

देवमर्त्यर्षिसङ्घं समास्कन्दितुं
स्यादभीप्सैव ते, को नु रोद्धुं क्षमः॥1॥

खड्गमात्रेण संसारमुत्प्लावितुं
स्याज्जिगीषैव ते, को नु रोद्धुं क्षमः॥2॥

कण्टकेनैव कण्टं निखातं पदे
उज्जिहीर्षाऽस्ति चेत्को नु रोद्धुं क्षमः॥3॥

सन्निपात्योटजं कस्यचिद्धर्मिणः
निर्मिमीषाऽस्ति ते, को नु रोद्धुं क्षमः4॥

गौतमर्षिप्रियादिव्यरूपश्रियां
सम्बुभुक्षैव ते को नु रोद्धुं क्षमः।5।

लोलजिह्वारसप्रीतये प्राणिनां
स्याज्जिघांसैव ते को नु रोद्धुं क्षमः॥6॥

रामभक्तिं विनाऽप्यब्धिपीनोरसां
स्यात्तितीर्षैव ते, को नु रोद्धुं क्षमः॥7॥

शीर्णवंशोपमैः कण्ठनादैरहो
स्याद् जिगासैव ते, को नु रोद्धुं क्षमः॥8॥

शारदावत्सलत्वादृते सत्कवेः
कीर्तिलिप्सास्ति चेत्को नु रोद्धुं क्षमः॥9॥

प्रातः 8.45
संस्कृतभवनम् लखनऊ
6.11.2011 ई.

कौन टोक सकता है?

देवताओं, मनुष्यों तथा ऋषियों के समूह को मटियामेट कर डालने की ही यदि ललक है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोकने में कौन समर्थ है।।1।।

तलवार के जोर से ही संसार में तहलका मचाने तथा इसे जीत लेने की यदि ख्वाहिश है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।।2।।

यदि काँटों से ही, पैर में गहरे धँसे काँटे को बाहर निकालने की इच्छा है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।। 3।।

यदि किसी सन्त की झोपड़ी को उजाड़कर ही (वहीं) अपनी हवेली बनाने की मंशा है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।।4।।

(हे देवनायक!) यदि महर्षि गौत्तम की (पतिब्रता) गृहिणी की दिव्य रूप-शोभा को निगल जाने की ही तुम्हारी तृष्णा है तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।। 5।।

(अपनी) लोल जिह्वा की स्वाद-तुष्टि मात्र के लिए यदि (छागादि निरीह) प्राणियों का वध कर डालने की आकांक्षा है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।। 6।।

राम-भक्ति के बिना भी यदि समुद्र की चौड़ी छाती को पार कर पाने की आकांक्षा है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।।7।।

फटे हुए बाँस जैसे कण्ठ की ध्वनियों से भी यदि रागिनी गुँजाने की लालसा है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।।8।।

(भगवती) शारदा के वात्सल्य के बिना भी यदि सत्कवियों-सरीखी कीर्ति पाने की इच्छा है तुम्हारी तो (तुम्हें) रोक पाने में कौन समर्थ है।। 9।।

नैव जाने

इयं कीदृक् पिपासा नैव जाने
असम्भाव्या तवाशा नैव जाने॥1॥

स्वयं निर्वापिता दीपा अतैलाः
तथापि ज्योतिराशा, नैव जाने॥2॥

मृता मीनाः सरसि शुष्के निदाघे
तदपि तज्जीवनाशा, नैव जाने॥3॥

कुलाये समुत्सन्ने मौकुलीनाम्
अहो पिकजातकाशा, नैव जाने॥4॥

विषमदृग्वह्निना दग्धे स्मरे किम्
स्मरारेः परिणयाशा, नैव जाने॥5॥

न पुंस्त्वं स्त्रीत्वमपि नो किन्नराणाम्
किमर्थं तद्विलासाः नैव जाने॥6॥

ययाऽऽत्मानं प्रविद्धो हन्ति कश्चित्
अहोऽसौ का दुराशा नैव जाने॥7॥

हृता सीता वने सति राघवेन्द्रे
कथेयं सोपहासा नैव जाने॥8॥

वपुषि निःश्वासततयः कियदवधिकाः
श्रयज्जीवनविलासा नैव जाने॥9॥

रात्रिः 8.30
निजामुद्दीन रे. स्टेशन
7.11.2011 ई.

नहीं जानता

यह किस तरह की प्यास है! मैं जानता नहीं। तुम्हारे (आने की) आशा असम्भाव्य है? मैं जानता नहीं।। 1।।

तेलरहित दीप स्वयमेव बुझ चले। फिर भी ज्योति की आशा है। नहीं जानता मैं।। 2।।

ग्रीष्म ऋतु में सूखे सरोवर में मर गई मछलियाँ। फिर भी (क्या) उनके जीवित हो उठने की आशा है? नहीं जानता मैं।। 3।।

कौवों का घोंसला उजड़ जाने के बाद (भी) आश्चर्य है, कोयल के बच्चों (के बच रहने) की आशा है? मैं नहीं जानता।। 4।।

तृतीय नेत्र की आगसे काम के भस्म हो जाने पर भी क्या काम के शत्रु (शिव) के परिणय की आशा है? नहीं जानता मैं।। 5।।

किन्नरों (हिजड़ों) में न पुरुषत्व होता है, न ही स्त्रीत्व! तो फिर उनकी चटक-मटक का क्या अभिप्राय है? नहीं जानता मैं।। 6।।

जिससे घायल (क्षत-विक्षत) होकर कोई आत्महत्या कर बैठता है, हन्त! वह दुराशा कैसी होती है? नहीं जानता मैं।। 7।।

राघवेन्द्र के रहते हुए भी बन में सीता अपहृत हो उठी। हँसी आती है इस घटना पर। नहीं जानता मैं (कि कैसे यह संभव हुई)।। 8।।

जीवन के सुख-भोग को धारण करने वाली श्वास-परम्पराएँ कितने समय तक के लिए हैं? नहीं जानता हूँ मैं।। 9।।

तस्मिन्नेव दिवसे

विधिस्सृष्टिं नु सञ्चक्लृपे यदेमां
अहं जातोऽस्मि तस्मिन्नेव दिवसे॥1॥

हतश्छागो मखे कश्चिद् यदादौ
अहं निहतोऽस्मि तस्मिन्नेव दिवसे॥2॥

उदचरद् ध्वनिररण्ये कीचकानाम्
अहं गातास्मि तस्मिन्नेव दिवसे॥3॥

यदा क्रन्दितवती क्रौञ्ची विपन्ना
ममाऽक्रन्दोऽपि तस्मिन्नेव दिवसे॥4॥

विजनमादौ किमपि दावेन दग्धम्
विदग्धोहमपि तस्मिन्नेव दिवसे॥5॥

यदा धरणी ननन्द पयोदवृष्ट्या
अनन्दं भूरि तस्मिन्नेव दिवसे॥6॥

पिको मत्तश्चुकूज यदाऽम्रवाट्याम्
अगायमहं नु तस्मिन्नेव दिवसे॥7॥

यदा दूर्वाऽवृताऽभ्द्वसुमतीयम्
पटाच्छन्नोऽस्मि तस्मिन्नेव दिवसे॥8॥

यतस्सुरभारती जाता ममाम्बा
अमृतपुत्रोऽस्मि तस्मिन्नेव दिवसे॥9॥

आश्रय-होटलम्
रात्रिः 11.10, 11.11 ई.
उज्जैन (म.प्र.)

उसी दिन

जिस दिन विधाता ने इस सृष्टि की संकल्पना की, मैं उसी दिन पैदा हो गया था।। 1।।

जब प्रारम्भ में कोई बकरा यज्ञ में काटा गया था, मैं उसी दिन मार डाला गया था।। 2।।

अरण्य में जिस दिन सूखे बाँसों (की रगड़) से ध्वनि उठी थीं मैं उसी दिन गाने लगा था।। 3।।

(क्रौञ्चवध से) विपन्न क्रौञ्ची जब चीख उठी थी, मैं भी उसी दिन (पहली बार) चीखा था।। 4।।

पहली बार जब कोई जंगल दावाग्नि में धू-धू कर जला था, मैं भी उसी दिन जल कर खाक हो गया था।। 5।।

जब (पहली बार) बादलों की वर्षा से धरती लहलहा उठी थी, उसी दिन मैं भी पोर-पोर लहरा उठा था।। 6।।

मतवाला कोकिल जब अमवारी में पिहका था (पहली बार) मेरे भी राग उसी दिन फूटे थे।। 7।।

जब यह धरती दूब से ढँक गई थी उसी दिन मैं भी वस्त्राभूषण से अलंकृत हुआ था।। 8।।

जिस दिन से **देववाणी संस्कृत मेरी जन्मदात्री बनी** उसी दिन मैं भी बन गया–**अमृतपुत्र**।। 9।।

हन्त सर्वार्थसिद्धम्

विलम्बेन माऽऽयाहि बालेऽभिसर्तुम्
क्वचिद् द्वारमेवास्तु नो तन्निरुद्धम्।।1।।

विधेहि स्मरं सत्वरं पूर्णकामम्
यथा क्रौञ्चमन्वेषि नो बाणविद्धम्।।2।।

दृशोस्ते स्फुरद्दामिनी तन्वि! दृष्टा
इदं मत्कृते हन्त सर्वार्थसिद्धम्।।3।।

नतिं त्रैवलीं वक्षसश्चोन्नतत्वम्
समीक्ष्योह्यते, यौवनं ते समृद्धम्।।4।।

भविष्यं समालोकये साधु सृष्टेः
अवेह्यङ्ग! मां वृद्धसम्पातिगृध्रम्।।5।।

परीतोषकादम्बिनीसान्द्रवृष्ट्या
मनोऽरण्यदावं समापय समिद्धम्।6।।

किमुच्येत वादित्रपेयाऽमृतानाम्?
घनं सौषिरं स्यात्ततं वाऽवनद्धम्।।7।।

अहो चित्रमारण्यका जानते यत्
शिशुं व्यासदेवं, शुकञ्चापि वृद्धम्।।8।।

क्व वा विश्रमो वर्हयोर्जीवनेऽस्मिन्
सकृच्चेद्धलं स्कन्धयोर्हन्त नद्धम्।।9।।

आश्रयहोटलम्
रात्रिः 12. बजे। उज्जैन (म.प्र.)
8.11.2011 ई.

सर्वार्थसिद्ध

हे बाले! अभिसार (प्रिय से गुपचुप मिलने) के लिए, देर से प्रयाण मत करो। कहीं उसका दरबाजा ही बन्द न मिले।। 1।।

(हे क्रौञ्ची!) **काम को** शीघ्रतापूर्वक **पूर्णकाम** कर ले जिससे कि (तेरा) क्रौञ्च (निषादके) बाण से विंधा हुआ न मिले।। 2।।

हे तन्वि! तुम्हारी आँखों में दीख रही है दमकती हुई बिजली! मेरे लिए तो यह सर्वार्थसिद्धि-योग है।। 3।।

त्रिवलियों की गहराई और वक्ष का उभार देख कर मैं मानने लगा हूँ कि तुम्हारा यौवन समृद्ध हो चला है।। 4।।

इस सृष्टि का भविष्य मैं भलीभाँति देख रहा हूँ। हे प्रियवर! मुझे भी तुम **बूढ़ा सम्पाती गीध** ही समझो।। 5।।

परितोष-रूपी घनघटा की धारासार-वर्षा से अपने मनरूपी वन की भयावह दावाग्नि को बुझा लो।। 6।।

बाद्य-यंत्रों से पीने योग्य अमृतों की क्या बात करें? चाहे वह घन हो अथवा सुषिर! तत हो अथवा अवनद्ध।। 7।।

बड़े आश्चर्य की बात है कि बनवासी लोग भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास को 'बच्चा' और (उनके युवापुत्र) शुकदेव को 'बूढ़ा' (परिपक्व) मानते थे।। 8।।

बैलों की इस जिन्दगी में भला विश्राम कहाँ, जो एक बार हल उनके कन्धों पर रख उठा।। 9।।

हृच्छूलकरमिह मन्यताम्

हृदयकान्तारे तवाग्निर्मनसि मम घनवर्षणम्
द्वयमिदं तुल्यं सखे! स्वजनाधिकरमिह मन्यताम्।।1।।

प्रीतिविस्मरणं प्रियस्य, विपन्नता सुहृदामपि
द्वयमिदं तुल्यं निरतिशयविरतिकरमिह मन्यताम्।।2।।

प्रत्यभिज्ञानं पिकस्य करोटिरोषविरोहणम्
द्वयमिदं तुल्यं सखे! दुर्भाग्यकरमिह मन्यताम्।।3।।

मम व्याकरणेऽरुचिस्तव चापि साहित्येऽगतिः
द्वयमिदं तुल्यं सखे! उपहासकरमिह मन्यताम्।।4।।

यशसि दुर्वारा रतिस्ते मम च सीमितकाङ्क्षता
द्वयमिदं तुल्यं सखे! स्वनिसर्गकरमिह मन्यताम्।।5।।

गन्धनिष्क्रमणं सुमात् जगतोऽभिराजविहीनता
द्वयमिदं तुल्यं सखे! हृच्छूलकरमिह मन्यताम्।।6।।

विश्रमः कुलपतिपदान्मे तव तुरीयारोहणम्
द्वयमिदं तुल्यं सखे! नृपनीतिकरमिह मन्यताम्।।7।।

भोजनं शतचाटुभिर्मम तव च पुच्छोध्दूननम्।
द्वयमिदं तुल्यं सखे! स्वविशेषकरमिह मन्यताम्।।8।।

काव्यसुरसिन्धुप्रवाहो मे तवाक्षरमेलनम्
द्वयमिदं तुल्यं सखे! वाक्प्रणतिकरमिह मन्यताम्।।9।।

आश्रयहोटलम्, उज्जैन
प्रातः 8.55
9.11.2011 ई.

हृच्छूलकर

तुम्हारे हृदयरूपी वन में लगी हुई आग (दावाग्नि) और मेरे मन (में निरन्तर हो रही) घनवर्षा! मित्र! दोनों ही स्थितियाँ एक जैसी हैं। इन्हें प्रियजनों के लिए मानसिक सन्ताप का कारण ही मानो।। 1।।

प्रणयीजनों का प्रेम-विस्मरण तथा मित्रों की विपन्नता। ये दोनो ही घटनायें अतिशय विरतिकारक हैं।।2।।

कोकिल-शिशु का (कौवे के घोंसले में) पहचान लिया जाना तथा कौवे का क्रोध में अन्धा हो जाना! मित्र! दोनों ही तथ्य समान हैं। इन्हें दुर्भाग्य का ही विषय मानो।। 3।।

मेरी **व्याकरणशास्त्र में अरुचि** और तुम्हारी **साहित्य में दुर्गति!** मित्र! दोनों स्थितियाँ एक जैसी ही हैं। इन्हें हँसी-हँसारत का ही विषय मानो।। 4।।

यश-कीर्ति पाने की तुम्हारी निर्मर्याद आसक्ति और मेरी **सीमित इच्छाएँ!** मित्र! दोनों बराबर ही हैं। इन्हें अपने-अपने स्वभाव की उपाज ही मानो।। 5।।

पुष्प से गन्ध का (बलात्) निष्क्रमण और **संसार का अभिराज-विहीन हो जाना!** मित्र! दोनों तथ्य एक ही जैसे हैं। इन्हें हृदय में शूल पैदा कर देने वाला ही मानो।। 6।।

मेरी कुलपति-पद से विश्रान्ति और तुम्हारा **चौथे आश्रम (संन्यास)** में प्रवेश! मित्र! ये दोनों समान ही हैं। इन्हें बस, व्यक्तिगत राजनीति का प्रतिफल ही मानो।। 7।।

सैंकड़ों मिन्नतों के बाद मेरा भोजन ग्रहण करना और तुम्हारा (मालिक के सामने भोजनार्थ) पूँछ हिलाना! दोनो समान हैं। इन्हें सांस्कारिक वैशिष्ट्य ही मानो।। 8।।

मेरी काव्यगंगा का (अजस्र) प्रवाह और तुम्हारा शब्दों का जोड़-तोड़! मित्र! दोनो ही एक जैसी स्थितियाँ हैं। इन्हें माँ सरस्वती की सपर्या-क्षमता ही मानो।। 9।।

भिषङ् मे भणति

स्पृशन् कामप्यहं स्यन्देऽसहायः
भिषङ् मे भणति यत्कामज्वरोऽयम्।।1।।

न जातु व्यस्मरं तां भिल्लबालाम्
भिषङ् मे भणति यन्नामज्वरोऽयम्।।2।।

प्रसन्नं प्रेक्ष्य तं व्यथया व्यथेऽलम्
भिषङ् मे भणति यद् द्वेषज्वरोऽयम्।।3।।

स्फुटं निन्दामि सद्वासोऽवतंसम्
भिषङ् मे भणति यद् वेषज्वरोऽयम्।।4।।

मनोरथरूढ एव नयामि कालम्
भिषङ् मे भणति दारिद्र्यज्वरोऽयम्।।5।।

श्रयाम्येकान्ततः पक्षं विपक्षम्
भिषङ् मे भणति वैक्लव्यज्वरोऽयम्।।6।।

स्मितं यज्जायते प्रतिवेशिविपदा
भिषङ् ये भणति माङ्गल्यज्वरोऽयम्।।7।।

श्रये सौजन्यमात्महितैकसिद्ध्यै
भिषङ् मे भणति सौजन्यज्वरोऽयम्।।8।।

भयं गीतायुषो वा क्वाऽभिराजः[1]?
भिषङ् मे भणति यत्काव्यज्वरोऽयम्।।9।।

रात्रौ 12.15 वादने
इन्दिरागान्धिविमानपत्तने
नईदिल्ली। 19.11.11. ई.।

---

1. अभिराट्। अभिराजः (षष्ठी ए.व.)

मेरा वैद्य बोलता है

किसी भी रमणी को छूते हुए मैं, विवश होकर, पिघलने सा लगता हूँ। मेरा वैद्य कहता है कि यह **कामज्वर** है।। 1।।

मैं उस भिल्लबाला (ग्रामकन्या) को भूल नहीं पाया। मेरा वैद्य कहता है कि यह **नामज्वर** (नामों को याद करने, भुलाने का बुखार) है! ।। 2।।

उसे (पड़ोसी) प्रसन्न देखकर मैं पीड़ा से अतिशय संतप्त होने लगता हूँ। मेरा वैद्य कहता है कि यह **द्वेषज्वर** है।। 3।।

सुन्दर वस्त्रों में (किसी को) सजा देख मैं (उसकी) आलोचना करने लगता हूँ। मेरा वैद्य कहता है कि यही है–**वेषज्वर**।। 4।।

आकांक्षाओं के रथ पर बैठा हुआ ही मैं समय बिताता हूँ। मेरा वैद्य कहता है कि यह **द्रारिद्र्य-ज्वर** है।। 5।।

(स्वार्थ में) अन्धा होकर मैं पक्ष या विपक्ष का पल्ला पकड़ता हूँ। मेरा वैद्य कहता है–यही है **वैक्लव्यज्वर!** (अर्थात् अविवेक का बुखार)।। 6।।

पड़ोसी की विपत्ति से जो (मेरे होठों पर) मुस्कान थिरकती है तो मेरा वैद्य कहता है कि **माङ्गल्यज्वर** (खुश होने का बुखार) है यह ।। 7।।

एकमात्र अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मैं सौजन्य का नाटक करता हूँ (निसर्गतः सुजन हूँ नहीं) मैरा वैद्य कहता है कि यही है **सौजन्य-ज्वर**।। 8।।

गीत ही जिसकी आयु है (जिन्दगी है) उस **अभिराज** को भला क्या भय? मेरा वैद्य कहता है कि यही है **काव्यज्वर**।। 9।।

शारदापादसक्तोऽभवम्

अन्धकारे प्रदीप्तोऽभवम्
दृक्प्रसारेऽपि सुप्तोऽभवम्॥1॥

वैदुषीणामहो का कथा?
मौढ्यभारेऽपि दृप्तोऽभवम्॥2॥

दारुणक्रौञ्चभार्याशुचा
रामगाने नियुक्तोऽभवम्॥3॥

राजराजोऽपि ते पाणयो–
र्याचनायां प्रसक्तोऽभवम्॥4॥

मन्महत्त्वं चुचुम्बाऽम्बरम्
वेदकुन्तापसूक्तोऽभवम्॥5॥

नित्ययात्राप्रसङ्गैरहो
पश्य, भार्यावियुक्तोऽभवम्॥6॥

व्यञ्जकश्शब्दकल्पोऽस्मि भोः
वक्तृबोद्धव्यशक्तोऽभवम्॥7॥

ऐङ्गुदोऽहं विरोपी रसः
त्वद्व्रणे यन्निषिक्तोऽभवम्॥8॥

प्रीणितोऽस्मि श्रिया यद्यपि
शारदापादसक्तोऽभवम्॥9॥

रात्रौ 3.23 वादने
इन्दिरागान्धिविमानपत्तने
नईदिल्ली। 19.11.11 ई.

शारदाचरणार्पित

अँधियार में भी मैं प्रदीप्त (दृष्टि-सम्पन्न) रहा और आँखें खुली रहने पर भी सोता रहा।। 1।।

वैदुषियों की भला क्या बात कही जाए? मूर्खता का बोझ (सिर पर लदा) रहने पर भी मैं दृप्त (घमण्ड में चूर) रहा।। 2।।

क्रौञ्चपत्नी की दारुण व्यथा से (दशरथनन्दन) राम के चरितगान में लग गया मैं।। 3।।

'राजराज' (जाना-माना) होते हुए भी, (हे सुन्दरि!) तुम्हारा हाथ माँगने के लिए मैं विवश (याचक) हो गया।। 4।।

मेरे महत्त्व को तो आकाश ने भी चूमा! (क्योंकि) **मैं था वेद का कुन्ताप-सूक्त।।** 5।।

देखो न, रोज-रोज के यात्रा-प्रसंगों के कारण मैं भार्या-वियुक्त बन गया! आश्चर्य है।। 6।।

व्यञ्जक शब्द के समान हूँ मेरे भाई, वक्ता और बोद्धव्य के कारण (अर्थान्तर देने में) समर्थ होता हूँ।। 7।।

(घाव को) पुजाने वाला इङ्गुदी का तेल हूँ मैं, जो तुम्हारे घाव पर लग गया हूँ (तो ठीक ही कर दूँगा)।। 8।।

यद्यपि लक्ष्मी के द्वारा (भी) कृपान्वित हूँ। तथापि समर्पित हो उठा हूँ (भगवती) हंसवाहिनी के चरणों में ।। 9।।

यो हि तुदादिर्जातः

नैव सहयात्रिसुखं नाऽपि चाऽथ नेत्रसुखम्
यानमपहाय समाजोऽद्य पदातिर्जातः॥ 1॥

प्रीतिमाबध्य हृदां हेममृगे लोकोऽयम्
नित्यसुखितोऽपि निजस्यालमरातिर्जातः॥2।

यौवनं हन्त! रतिक्षीण एष वार्द्धक्ये
याचमानोऽद्य सुतं को न ययातिर्जातः॥3॥

उत्पथे श्रौतपथाद् ब्राह्मणेऽद्य सञ्जाते
स्वैरमुपवीतबलैः को न द्विजातिर्जातः॥4॥

घृतान्नु भूरि बलीयो जलं, न संशीतिः
यतो हि यज्ञशिखी तेन सुशान्तिर्जातः॥5॥

तस्य वै धातुगणस्यास्तु किं स्वरूपमहो!
पाणिनेः सत्कृपया यो हि तुदादिर्जातः॥6॥

प्रस्थितशशक्तिमदैर्जातु भास्करं स्प्रष्टुम्
तत्फलं पश्य, निपत्याऽद्य सुपातिर्जातः[1]॥7॥

सुखं स्वपन्तु जनाःसूर्यतापसन्तप्ताः
इतीव नक्तमसाविन्दुरकान्तिर्जातः॥8॥

यद्वशे हन्त भवेयुस्सखे! तदाकाङ्क्षाः
साधु जानीहि धराधाम्नि स निरार्तिर्जातः॥9॥

प्रातः 8.30
शिमला, 21.11.11 ई.

---

1. सम्पातीति रामायणे।

जो तुदादि बन गया

न रहा साथ यात्रा करने वालों का सुख और न ही नेत्रों का आनन्द! आज समाज यान छोड़ कर पैदल चलने लगा है।। 1।।

सुवर्णमृग (रुपए-पैसे) में दृढ़ आसक्ति बाँधकर यह समाज, परम सुखी होते हुए भी, अपना ही जानी दुश्मन बन गया है।। 2।।

बुढ़ौती में रतिक्षीण हुआ यह संसार, आज **बेटे से ही यौवन उधार माँगने वाला** (राजा) ययाति बन गया है।। 3।।

बाभनों के वेदमार्ग से विचलित हो जाने की स्थिति में बेहिचक जनेऊ पहन कर कौन द्विजाति (ब्राह्मण) नहीं बन बैठा है।। 4।।

घी से भी कहीं अधिक बलवान् होता है जल–इसमें रंचमात्र संशय नहीं है क्योंकि यज्ञ की (घृतवर्धित) आग उसी (जल) से पूर्णतः शान्त हो जाती है।। 5।।

आश्चर्य है! भला उस धातुगण का स्वरूप कैसा होगा (महर्षि) पाणिनि की महती कृपा से जिसकी शुरुआत ही होती है तुद्धातु से।। 6।।

बल-पौरुष के घमण्ड में जो कभी सूर्य (तक) को छूने के लिए प्रस्थित हो चला था, उसका फल देखो कि (जला-भुना) नीचे गिरा वह आज सम्पाती (जटायु का बड़ा भाई) बन गया है।। 7।।

सूरज की धूप से सन्तप्त लोग सुख की नींद सोएँ–मानो इसी भावना से वह चन्द्रमा रात में आतप-रहित बन गया।। 8।।

हे मित्र! जिसकी आकांक्षाएँ उसके वश में हों, अच्छी तरह समझ लो कि धराधाम पर बही व्यक्ति विपत्ति-हीन है।। 9।।

रमा सती सावित्री नारी

धरणीवक्षसि शुष्कविस्तरे
भूत्वाऽपगा प्रचलिता नारी॥1॥

छलच्छद्मषड्यन्त्रनिसर्गे
करुणैका प्रतीयते नारी॥2॥

शवभूते ब्रह्माण्डपदार्थे
शक्तीभूय समुदिता नारी॥3॥

शाखामये तरौ प्रतिवृन्तम्
किन्न पुष्पिता फलिता नारी॥4॥

परमेश्वरमपि गर्भे दधती
तज्जननीत्वसुमहिता नारी॥15

पाषाणे निर्जीवविरूपे
मूर्तीभूय जीविता नारी॥6॥

कण्ठध्वनौ क्वचिच्छतसंख्ये
लयलहरी समजायत नारी॥7॥

पुरुषनियतिसूत्रैकधारिणी
रमा सती सावित्री नारी॥8॥

मामप्यभिराजं या कुरुते
जयति कापि राजश्रीर्नारी॥9॥

नीलगगनम्, जनकपुरी
नई दिल्ली
10 पूर्वाहण: 24.11.11

नारी

शुष्क विस्तारवाली धरती की छाती पर, नारी बह रही है नदी की तरह।। 1।।

छल, छद्म एवं षड्यन्त्र से भरे निसर्ग (वातावरण) में एक नारी ही करुणा प्रतीत होती है।। 2।।

शव (मुर्दा) बने हुए ब्रह्माण्ड-रूपी पदार्थ में नारी शक्ति बन कर उदित हुई है।। 3।।

शाखाओं से ओत-प्रोत वृक्ष में क्या नारी टहनी-टहनी में फूल और फल नहीं बन गई हैं।। 4।।

(नर-रूप में अवतीर्ण) परमेश्वर को भी गर्भ में धारण करने वाली नारी क्या उनके 'जननीत्व' से सम्मानित नहीं है।। 5।।

प्राणरहित, बेडौल पत्थर में भी मूर्ति बन कर नारी ही जीवन्त है।। 6।।

सैंकड़ों संख्या वाली कण्ठ की ध्वनि में नारी ही **लयलहरी** बन कर प्रतिष्ठत हुई।। 7।।

पुरुषों के भाग्यसूत्र की एकमात्र धारिणी नारी ही रमा, सती एवं सावित्री बनी।। 8।।

मुझ (सामान्य जन) को भी जिसने **'अभिराज'** बना दिया वह कोई (मेरी अर्धाङ्गिनी) **राजश्री** भी नारी ही है।। 9।।

मानवो वा पशुर्वा?

न तत्प्रीतिरासीन्नरे नाऽपि देवे
ततोऽसौ निजस्वार्थमात्रं सिषेवे॥1॥

न रज्जावहेर्भ्रान्तिरुत्था तदीया
ततोऽभून्न माया सपत्नी तदीया॥2॥

स्वकृत्यं मनाङ्नाऽपि दुष्टं स मेने
ततस्तस्य पापेन पापं न तेने॥3॥

पशूनां प्रवृत्तौ दृढं श्रद्दधेऽसौ
ततो धर्मदृष्ट्या तटस्थो जनेऽसौ॥4॥

परप्रीतये तिन्तिडीमाम्रमुक्त्वा
स निर्द्वन्द्व आसीदहो साधु भुक्त्वा॥5॥

यतन्ते परे स्वेतिहासं विधातुम्
स्वयं तं ववारेतिहासोऽपि गातुम्॥6॥

न तस्याऽभवन्मानसं नाऽयमात्मा
उभौ तत्प्रियौ, धार्मिको वाऽथ पाप्मा॥7॥

स चार्वाकमार्गी परं देहवादी
जिजीवाऽखिलं जीवनं केवलादी॥8॥

परस्मिन्नसौ जन्मनि प्रेत्य को वा
भविष्यसौ मानवो वा पशुर्वा॥9॥

प्रातः 7 वादने, अतिथिभवनम्, पौड़ी
14.12.2011

मानव या पशु?

न उसकी प्रीति मनुष्य में थी, न ही देवता में। इसीलिए उसने अपने स्वार्थमात्र की सम्पादना की।। 1।।

रस्सी में उसे कभी भी साँप के होने की भ्रान्ति नहीं हुई। इसीलिए 'माया' कभी भी उसकी बैरन नहीं बनी।। 2।।

अपने आचरण को उसने तनिक भी अनुचित नहीं माना। इसीलिए उसके पापाचारों से (उसकी दृष्टि में) पाप नहीं बढे।। 3।।

पशुओं की प्रवृत्ति (आदतों) में उसकी दृढ़ श्रद्धा थी। इसीलिए वह व्यक्ति, धर्म की दृष्टि से तटस्थ (उदासीन) ही रहा।। 4।।

दूसरे की प्रीति के लिए इमली को भी आम कहने वाला वह, भलीभाँति खा-पीकर निर्द्वन्द्व ही रहा।। 5।

और लोग तो अपना इतिहास बनाने (रचने) का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इतिहास ने तो यशोगान करने के लिए स्वयमेव उसका वरण किया।। 6।।

न उसका कोई 'मन' था, न ही वह (प्रसिद्ध) आत्मा! उसके तो दोनों ही प्रिय रहे–धार्मिक भी, पापात्मा भी।। 7।।

वह था चार्वाकमतानुयायी, सच्चा देहवादी; सारी जिन्दगी गुजार दी उसने अकेले ही खाने में।। 8।।

मरने के बाद दूसरे जन्म में वह भला क्या होगा? मनुष्य अथवा पशु।। 9।।

पौड़ी

स्वर्गसोपानशुभाङ्गी प्रतीयते पौड़ी
शैलभूपालकुरङ्गी प्रतीयते पौड़ी।।1।।

समुद्यदिन्दुविभाभिस्समर्चिता सायम्
चण्डमुण्डादिनिहन्त्री प्रतीयते पौड़ी।।2।।

समक्षवर्तिचतुस्तम्भसानुसान्द्रहिमैः
सदैव चारुसिताङ्गी प्रतीयते पौड़ी।।3।।

प्रभातभानुकरैः शोणिते हिमे जाते
कृपीटयोनिवृताङ्गी प्रतीयते पौड़ी।।4।।

गताऽगतैश्च नृणां चैत्यघण्टिकानादैः
प्रतिक्षणं हि चिदङ्गी प्रतीयते पौड़ी।।5।।

श्रीपुरे नाऽतिविदूरे वहत्यलकनन्दा
तज्जलस्नातनताङ्गी प्रतीयते पौड़ी।।6।।

वैभवैः स्वैः महीधरेशराजधानीयम्
ओषधिप्रस्थपदाङ्गी प्रतीयते पौड़ी।।7।।

देवतात्मन्यहो हिमालयस्य संहनने
स्पन्दमानेव हृन्निभा प्रतीयते पौड़ी।।8।।

प्रातः 7.30 वादने
अतिथिभवनम्, पौडी
14.12.2011

पौड़ी

स्वर्ग तक लगी मंगलमय सोपान-पङ्क्तियों (सीढ़ियों) सी लगती है पौड़ी (नगरी), पर्वतराज हिमालय की कुरंगी सी प्रतीत होती है पौड़ी।। 1।।

सन्ध्या-वेला में उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणों से समर्चित चण्ड-मुण्डादि-विनाशिनी दुर्गा सी लगती है पौड़ी।। 2।।

सामने ही (पूर्व दिशा में) विद्यमान हिमालय के चार शिखरों पर जमी घनी बर्फ के कारण सदैव ही मनोरम श्वेत अंगों वाली परिलक्षित होती है पौड़ी।। 3।।

प्रभातकालीन सूर्य की मयूखों से, हिमराशि के अरुणिम होते ही अग्नि-ज्वालाओं में लिपटी सी प्रतीत होती है पौड़ी ।। 4।।

नागरिकों के गमनागमनों से तथा मन्दिरों के घण्टा-घडियालों के नाद से प्रतिक्षण जीवन्त प्रतीत होती है पौड़ी।। 5।।

समीप में ही विद्यमान श्रीनगर में बहती है (भगवती) अलकनन्दा! उनके जल में स्नात (अतएव ठिठुरनवश) सिकुड़े अंगों वाली प्रतीत होती है पौड़ी।। 6।।

अपने विलास-वैभव के कारण (पुराण-प्रसिद्ध) **ओषधिप्रस्थ** नाम वाली, पर्वतराज हिमालय की राजधानी ही प्रतीत होती है यह पौड़ी।। 7।।

देवतात्मा हिमालय के शरीर में स्पन्दमान (धड़कते हुए) हृदय-सरीखी प्रतीत होती है पौड़ी।। 8।।

न मां प्रतिबोधय

वञ्चय मां निजपापं वर्धय
पीडय मां स्वमरणमामन्त्रय॥1॥

शिवभक्ष्यं धत्तूरफलमहम्
भक्षय मां गौर्गलितामभिनय॥2॥

अपटुस्त्वं वापीमपि तर्तुम्
माऽऽत्मानं मयि सिन्धौ मज्जय॥3॥

सिंहोऽहं व्याजेन शयालुः
भक्ष्यीभूय न मां प्रतिबोधय॥4॥

ताण्डवमहं प्रारिरिप्सुर्भोः
ढक्कां स्वैरं त्वमपि निनादय॥5॥

शनकैः प्राणहरोऽस्मि भुजङ्गः
इच्छसि चेद् वदनेऽङ्गुलिमापय॥6॥

त्वमसि मूषिकोऽहं दावाग्निः
कथमपि वत्स! जीवनं वारय॥7॥

तीर्थमहं माऽऽचर मयि दुरितम्
मा निजकुलं रौरवे पातय॥8॥

मनोवाक्कर्मभिस्सदैकः
त्रिषु भिन्नस्त्वं नियतिं चिन्तय॥9॥

पूर्वाह्णः 11.15
राजस्थान वि.वि. गेस्टहाउस
जयपुरम्, 19.12.2011 ई.

मत जगाओ मुझे

ठगो मुझे (और) बढाओ अपना पाप! सताओ मुझे (और) निर्मंत्रित करो अपनी मृत्यु को।। 1।।

देवाधिदेव शिव का भक्ष्यभूत धतूर-फल हूँ मैं। खाओ मुझे (और) बड़बड़ाओ पागलों की तरह।। 2।।

बावड़ी भी तैर पाने में तुम समर्थ नहीं हो (तो फिर) समुद्र-सरीखे मुझमें अपने को मत उतारो।। 3।।

बबर शेर हूँ मैं। सोने का (बस) नाटक कर रहा हूँ (वस्तुतः सोया नहीं हूँ) मेरा निवाला बनकर जगाओ नहीं मुझ को।। 4।।

बन्धुओ! शुरु करने वाला हूँ मैं ताण्डव (उद्धत नृत्य) तुम भी ढ़ाँक बजाना शुरू कर दो।। 5।।

चुपचाप प्राण हर लेने वाला कोबरा (साँप) हूँ मैं। अन्दाजना ही चाहते हो तो (मेरे) मुँह में उँगली डालो।। 6।।

तुम हो चूहे और मैं हूँ दावाग्नि! मेरे बेटे! किसी भी प्रकार बचालो अपना जीवन।। 7।।

मैं (पवित्र) तीर्थ हूँ। मेरी छाती पर पापाचार मत करो। अपने कुल-खानदान को रौरव-नरक में मत ठेलो ।। 8।।

मैं मन, वाणी तथा कर्म से सदैव 'एक' रहा हूँ। और तुम? तीनों में अलग-थलग रहे हो। सोचो अपने परिणाम को।। 9।।

अम्बोपचित्यै

व्यथावल्लकीतन्त्रिकासु प्रहारं
सखे! मा कृथा दुःखरागोपपत्त्यै॥1॥

श्रुतं यद्भवेत् कर्णिनी मृत्तिकाऽपि
ततो वच्मि किञ्चित् स्वगेहस्य भित्त्यै॥2॥

जगत्प्रत्यवायैः परीतं प्रतीतम्
मया जीवनं दत्तमम्बोपचित्यै॥3॥

तव ध्यानमारम्भणे केन्द्रितं भोः
सचिन्तोऽभवं किन्त्वहं कर्मक्लृप्त्यै॥4॥

अहो स्वार्थहेतोः समेषां प्रयासः
कथं यत्यते नो जनैर्लोकतृप्त्यै॥5॥

धनी बाणभट्टः कथाऽऽख्यायिकायाः
जिजीवाऽनिशं कोऽपि गोविन्दगीत्यै॥6॥

धियं वामनीं वामनस्य प्रणौमि
कवित्वात्मता येन दत्ताऽस्ति रीत्यै॥7॥

अयं वक्ति गङ्गातटस्थां नु दिल्लीम्
नमो देशिकायाऽस्य तस्याऽप्यधीत्यै॥8॥

कृतं रुग्णशय्याशतायुष्यहेम्ना
स्पृहा मे दृढा नीरुजेऽद्धास्त्यशीत्यै॥9॥

शिमला रात्रि : 7.17
22.12.2011

अम्बोपचिति

व्यथारूपी बीणा के तारों को मत छेड़ो मित्र! पीड़ा की रागिनी पैदा हो जाएगी।। 1।।

आपने तो सुना ही होगा कि दीवार के भी कान होते हैं। इसलिए मुझे जो कुछ कहना होता है उसे अपने घर की दीवार से ही कहता हूँ।। 2।।

सारा संसार ही विघ्न-बाधाओं में उलझा प्रतीत हुआ। इसलिए मैंने जिन्दगी ही समर्पित कर दी भवानी की उपासना में।। 3।।

तुम्हारा ध्यान केन्द्रित रहा (शानदार) शुरुआत पर। परन्तु मैं चिन्तित रहा (निर्विघ्न) कार्यपूर्ति के लिये।।4।।

आश्चर्य है कि हरेक व्यक्ति का प्रयास अपनी अर्थ-सिद्धि के ही लिए होता है। लोग-बाग (समूचे) समाज की तृप्ति के लिए प्रयासरत क्यों नहीं होते।। 5।।

(महाकवि) बाणभट्ट तो कथा एवं आख्यायिका (सर्जना) के धनी रहे। परन्तु कोई दूसरा (महाकवि जयदेव) तो सारा जीवन जीता रहा मात्र राधा-माधव के यशोगान के लिए।। 6।।

मैं तो आचार्य वामन की **वामनी** (बौनी) बुद्धि को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने रीति को काव्य की आत्मा मान लिया।। 7।।

यह बोलता है कि **दिल्ली गंगा के तट पर** बसी है। प्रणाम करता हूँ इसके गुरु को और प्रणाम करता हूँ इसकी पढ़ाई-लिखाई को भी।। 8।।

रोग-शय्या पर पड़े-पड़े सुनहरे सौ वर्ष जीने का क्या लाभ? मेरी तो दृढ आकांक्षा (लालसा) है सचमुच रोगरहित अस्सी वर्ष की आयु के लिए।। 9।।

तद्दातुमम्ब! न शक्नुषे

यदभीष्टमासीन्मामकं तद्दातुमम्ब! न शक्नुषे
अहमस्मि मृत्युमुखे स्थितो मां त्रातुमम्ब! न शक्नुषे॥1॥

गान्धर्ववेदविलक्षणा मम जीवनेच्छागीतिका
तस्यास्तु रागं दुर्ग्रहं त्वं गातुमम्ब! न शक्नुषे॥2॥

चरणान्तिकस्थमपीह ते विदहन्ति मां विपदग्नयः
तेनेदमधुना निश्चितं यत्पातुमम्ब! न शक्नुषे॥3॥

सत्पात्रताविषये मदीये सन्दिहाना लक्ष्यसे
मन्ये ततो मां नन्दितुं वा हातुमम्ब! न शक्नुषे॥4॥

मद्रक्षणेऽशक्ताऽसि चेत् मुच्ये त्वया नो कथमहम्?
मन्ये विरुदभीताऽपरानाह्वातुमम्ब! न शक्नुषे॥5॥

रुदितं प्रभाते शैशवे, मध्यन्दिने, सन्ध्याऽधुना
रात्रिस्समीपस्थेति किं विज्ञातुमम्ब! न शक्नुषे॥6॥

परिरक्षणं ननु जीवतो, न मृतस्य जातु विधीयते
एवं विजानत्यपि मनस्सन्धातुमम्ब! न शक्नुषे॥7॥

श्रुतमृषिमुखैर्भुवनत्रयं कुरुषे विकुरुषे लीलया
शरणागतस्य कुतोऽभयं प्रविधातुमम्ब! न शक्नुषे॥8॥

मूर्च्छामि रोदिमि पातयामि निरर्गलं लोचनजलम्
अवलोकयन्त्यपि सम्यगुन्निद्रातुमम्ब! न शक्नुषे।9॥

इन्दिरागान्धी एयरपोर्ट, दिल्ली।
प्रातः 7.45. 1.1.2012 ई.

वह देने में समर्थ नहीं हो माँ!

जो मेरे लिए अभीष्ट (आकांक्षित) है माँ! वह दे पाने में तुम समर्थ नहीं हो। मैं तो पड़ा हूँ मृत्यु के मुख में। परन्तु माँ! तुम मुझे बचा पाने में असमर्थ हो ।। 1।।

मेरे जीवन की आकांक्षा का गीत, संगीतशास्त्र की दृष्टि से बिलक्षण रहा है। उसकी राग पकड़ पाना अत्यन्त कठिन है। हे माँ! तुम भी उसे गा नहीं सकीं।। 2।।

तुम्हारे चरणों की शरण में बैठे हुए भी मुझको विपदाओं की अग्नियाँ दग्ध करती रही हैं, जिससे अब यह निश्चित हो उठा है कि हे माँ! तुम मेरी रक्षा कर पाने में समर्थ नहीं हो।। 3।।

मेरी सत्पात्रता के विषय में भी तुम सन्देह-ग्रस्त ही प्रतीत होती हो। मैं तो मानता हूँ कि इसी (सन्देह, अनिश्चय) के कारण तुम मुझे **स्वीकारने अथवा छोड़ने** में समर्थ नहीं हो।। 4।।

यदि (सचमुच) मेरी रक्षा कर पाने में समर्थ नहीं हो तो तुम्हारे द्वारा मैं छोड़ क्यों नहीं दिया जाता? मुझे तो लगता है कि अपनी प्रतिष्ठा के ही कारण (मेरी रक्षाहेतु) **अन्य सहायकों को बुला पाने में** समर्थ नहीं हो तुम।। 5।।

रोता रहा भोरहरे बचपन में, दुपहरी (यौवन) में और अब सन्ध्या में! क्या यह भी जान पाने में समर्थ नहीं हो माँ! कि अब रात भी सिर पर मँडराने लगी है।। 6।।

सुरक्षा भी जीवित रहते प्राणी की ही संभव है। मरे हुए की रक्षा कभी नहीं की जाती। यह सब जानती हुई भी माँ! मन मुझ पर केन्द्रित करने में समर्थ नहीं हो।। 7।।

ऋषियों के मुँह से ही मैंने सुना है कि तीनों लोकों को अपनी लीलामात्र से बनाती-बिगाड़ती रहती हो। तो फिर शरणागत मुझ को अभय प्रदान करने में क्यों नहीं समर्थ हो पा रही हो माँ।। 8।।

भलीभाँति मूर्च्छित हो रहा हूँ, रो रहा हूँ, निरन्तर अश्रुपात कर रहा हूँ। यह सब, देखती हुई भी, आँखें खोल पाने में समर्थ नहीं हो रही हो।।9।।

तन्मरणमेव वृणे

स्यात्सर्वरोगमहौषधं तन्मरणमेव वृणे
स्यात्सर्वतोऽप्यभयप्रदं तन्मरणमेव वृणे॥1॥

शाम्यन्त्वकारणवैरिणां यदि बुद्धिदुर्भावाः
क्वचिदपगते मयि केवलं तन्मरणमेव वृणे॥2॥

कस्यापि राज्यारोहणे यदि विघ्नभूतोऽहम्
तर्हि तं विघ्नं निहन्तुं मरणमेव वृणे॥3॥

यदि यशश्चन्द्रस्य कस्याप्यस्मि राहुरहम्
तर्हि घिङ्मे जीवितत्वं मरणमेव वृणे॥4॥

यद्यहं सञ्चरणमार्गे कस्यचिच्छूलम्
तदप्यात्मानं जरयितुं मरणमेव वृणे॥5॥

छिन्नमूलतरोः क्व शाखा क्व च फलं पुष्पम्!
तद्वचोऽवितथीविधातुं मरणमेव वृणे॥6॥

ये स्वपन्ति सुखं न, मयि जीवति निशीथिन्याम्
ते स्वपन्तु यथासुखं, ननु मरणमेव वृणे॥7॥

पुनर्जननं मे ध्रुवं मरणेन का हानिः!
किन्त्विमे सुखिनो भवेयुर्मरणमेव वृणे॥8॥

यदि मरणपर्यायभूतं जीवनं जातम्
तर्हि मिथ्याश्वसितिभिः किं मरणमेव वृणे॥9॥

इन्दिरागान्धी एयरपोर्ट, दिल्ली
प्रातः 9.30
1.1.2012 ई.

मृत्यु-वरण

यदि सारे रोगों की (वही) अचूक औषधि हो तो मृत्यु को ही गले लगा लूँ। यदि हर दृष्टि से (वही) अभय प्रदान करने वाली हो तो मत्यु का ही वरण कर लूँ।। 1।।

यदि **अकारणवैरियों** के दुर्वुद्धिजन्य द्वेष, मात्र मेरे ही कहीं और चले जाने से शान्त होने को हों तो फिर मृत्यु का ही वरण कर लूँ।। 2।।

यदि किसी के राज्यारोहण (अभ्युदय) में मैं ही विघ्नभूत सिद्ध हो रहा हूँ तो फिर उस विघ्न को नेस्तनाबूद करने के लिए मृत्यु का ही वरण कर लूँ।। 3।।

यदि मैं (ही) किसी के **यशश्चन्द्र का राहु** बन बैठा हूँ तो फिर धिक्कार है मेरे जीवित बनेरहने को! मृत्यु का ही वरण कर लूँ।। 4।।

यदि मैं किसी के सञ्चरण-मार्ग का शूल (काँटा) हूँ तो फिर अपनी समाप्ति के लिए मृत्यु का ही वरण कर लूँ।। 5।।

कटी हुई जड़ वाले वृक्ष की शाखायें कहाँ? फूल कहाँ? फल कहाँ? उस सुभाषित को सच बनाने के लिए मत्यु का ही (क्यों न) वरण कर लूँ।। 6।।

हे प्रभो! मेरे जीवित रहने के कारण, जिन्हें रात में सुखभरी नींद नहीं आती है वे तो सुखपूर्वक सोएँ! मैं ही मृत्यु का वरण कर लूँ।। 7।।

मृत्यु से हानि ही क्या है? क्योंकि मेरा पुनर्जन्म तो अटल है। परन्तु ये मेरे बैरी सुखी हो जाएँ। इसलिए मैं (ही) मर जाऊँ।। 8।।

यदि जिन्दगी मृत्यु का ही पर्यायभूत हो तो फिर झूठी श्वासों से क्या लाभ? मृत्यु का बरण कर लेना ही श्रेयस्कर है।। 9।।

नयनं निरश्रु जातम्

नयनं निरश्रु जातं वन्द्याऽर्चनार्घ्यदानैः
संस्तम्भितश्च कण्ठो नित्यप्रशस्तिगानैः॥1॥

सामान्यमानवोऽहं ननु सीमितास्ति शक्तिः
प्राप्तं मया न किञ्चिन्मर्त्येतरप्रमाणैः॥2॥

निघ्नन्तु मां भवन्तः करवाण्यहं समर्चाम्?
सम्बन्ध एष घटतां कथमिव विरुद्धमानैः॥3॥

हृदये निरन्तरालाः क्रन्दनरवाः समुत्थाः
रङ्गं प्रसादयिष्ये कियदिह विपन्नगानैः॥4॥

सीमाः सहिष्णुतायाः सर्वा अपि प्रणष्टाः
हृष्यन्तु मे सपत्ना आकाङ्क्षितैर्निदानैः॥5॥

लावारसोऽस्मि पृथ्व्या ज्वलदग्न्यकल्प्यतापः
शीतो न जातु भविता हिमसिन्धुनित्यपानैः॥6॥

अद्याऽद्यभावनाभिर्वृष्टेर्मरौ मयाऽऽयुः
क्षपितं वृथैव बन्धो! विद्धस्समीरबाणैः॥7॥

श्रद्धामहो नु कियतीं नियतौ प्रदर्शयेयम्
क इवेह लक्षयिष्ये रहितो निजाभिमानैः॥8॥

श्रोतुं क्षमोऽसि यदि भोः शृणु दीनहीनबन्धो!
मा क्रीड निर्धनानां नक्तन्दिवाऽपमानैः॥9॥

इन्दिरागान्धी एयरपोर्ट, दिल्ली
मध्याह्नः 12.15
1.1.2012 ई.

नयन निरश्रु

वन्दनीयों की अर्चना-पूजा में अर्घ्यदान देते-देते आँखों में अश्रु नहीं बचे। निरन्तर प्रशस्तिगान (स्तोत्रपाठ) करते-करते गला बैठ गया।। 1।।

मैं एक **साधारण** मनुष्य ठहरा! सीमित ही है मेरी सामर्थ्य! मर्त्येतर अर्थात् देवताओं के समकक्ष मुझे कुछ भी तो नहीं प्राप्त हुआ है।। 2।।

आप मुझे निरन्तर हलाल करते रहें और मैं आपकी पूजा करूँ? एक-दूसरे के विरुद्ध मान (नाप) वाला **यह सम्बन्ध** कैसे सम्भव हो सके है।। 3।।

हृदय में उठ रहे हैं घनीभूत क्रन्दन के स्वर! विपन्न गीतियोंसे मैं यहाँ रङ्ग का मनोरञ्जन कितना कर सकता हूँ।। 4।।

सहिष्णुता की सारी ही सीमाएँ नष्ट हो चुकी हैं। मेरे वैरी प्रसन्न हों कि उन्हें मनचाहा निदान मिल रहा है।। 5।।

खौलती हुए आग के ताप-सरीखा, **धरती का लावारस** हूँ मैं! बर्फीले समुद्र के नित्य पान से भी कभी ठंडा नहीं हो पाऊँगा।। 6।।

'आज बारिश होगी, आज बारिश होगी' इन्हीं संभावनाओं से मैंने निरर्थक ही जिन्दगी गुजार ली **मरुभूमि** में। मेरे भाई! बिंधता रहा हूँ झकोरों के बाणों में।। 7।।

नियति (भाग्य) के प्रति भला कितनी श्रद्धा प्रदर्शित करूँ? यदि अपना अभिमान ही अक्षत नहीं रहा तो **'किसके समान'** (कैसा) दिखाई पड़ूँगा।।8।।

हे दीनो-हीनो के बन्धु (परमेश्वर) यदि सुन पाने में समर्थ हो तो सुनो! असहायों के नक्तन्दिव अपमानों से मत खेलो।। 9।।

जानाति वृद्धो विधाता

कृतं किञ्चिदेवं लसद्दर्पणेन
तदुत्प्रेरणैरुन्मदाऽहं प्रजाता॥1॥

किमन्यत् स्वसौन्दर्यसन्देहरात्रिः
अकस्मादिदानीमियं सुप्रभाता॥2॥

निलीनं दृशोर्मे नु यद्धीन्द्रजालम्
तदीयाऽऽयतिश्चाप्यभूत्साऽवदाता॥3॥

विना देशिकेनाऽपि सर्वेऽङ्गहाराः
मया साधिताः, पादचारी निशाता॥4॥

स्फुरद्यौवनं प्रत्यभिज्ञाय सद्यः
प्रलीनं भयं क्वापि लज्जाऽपयाता॥5॥

कृतो दर्पणेनाऽत्मबोधो यथा मे
तथा नाऽकरोत्तातपादो न माता॥6॥

न संज्ञा विशेषो, न वा सर्वनाम
प्रिया मे यथा रूपधर्मा निपाताः॥7॥

अहो मौकुरं मे यदुन्मादि रूपम्
फलं त्वस्य जानाति वृद्धो विधाता॥8॥

श्रीगोडवाडभवनम्, बँगलौर
रात्रिः 8.30
2.1.2012 ई.

जानता है बूढा विधाता

शानदार दर्पन ने कुछ ऐसा कर दिया कि उसके उकसाने मात्र से मैं मतवाली बन गई।। 1।।

और कुछ क्या कहूँ? अपने सौन्दर्य की इस सन्देह-रात्रि (मैं सुन्दर हूँ कि नहीं? इस विचिकित्सा की रात्रि) का अकस्मात् सुप्रभात ही हो गया।। 2।।

(अपना सौन्दर्यबोध होने के बाद) मेरी आँखों में जो इन्द्रजाल (विभ्रम) आ बसा उसकी आयति (भविष्यगति) भी समुज्ज्वल हो उठी (कि इन आँखों से ही मैं भविष्य में नजाने क्या कर डालूँगी)।। 3।।

बिना किसी शिक्षक के ही सारे अंगहार मैंने साध लिए, सारी पादचारी (विलासगतियाँ) अपना ली।। 4।।

अपने देदीप्यमान यौवन को पहचान कर मेरा (सारा) भय तुरन्त नष्ट हो गया, मेरी लज्जा भी न जाने कहाँ लापता हो गई।। 5।।

दर्पन ने जिस प्रकार मुझे मेरा ज्ञान कराया वैसा तो न पिता-श्री ने कराया था, न माता-श्री ने।। 6।।

अब न संज्ञा, न विशेषण, न ही सर्वनाम मुझे उतने प्रिय लगते हैं जितने कि अव्यय (maintained) रूप के धर्म।। 7।।

आश्चर्य है, दर्पन में प्रतिबिम्बित हुआ जो मेरा उन्मादी (मन्मथ) रूप, उसका क्या फल होगा? इसे तो बस बूढ़ा ब्रह्मा ही जानता है।। 8।।

विज्ञातं मया सम्यक्तया तर्तुम्!!

गिरौ वसता मयाऽभ्यस्तं शिलाभ्यो मूर्तिमुन्नेतुम्
विषहता परिभवं बहुशो मया शिक्षितमहो जेतुम्।।1।।

शठानपि कुक्कुरान् दृष्ट्वा बलीयेभ्यश्शवीभूतान्
मया खलु विस्मृतं बन्धो! कबन्धाद्रावणाद् भेतुम्।।2।।

अनेकश एव पाथोधौ निमज्जनसाध्वसं जातम्
परं तैरेव विज्ञातं मया सम्यक्तया तर्तुम्।।3।।

हरन्त्येवाऽवलोकयतां सुवर्णं हेमकारास्ते
अनुश्रुत्याऽनयाऽऽरब्धं मयाऽपि त्वन्मनो हर्तुम्।।4।।

त्वमसि मयि सानुरागा किन्तु संसाराद्विरक्तोऽहम्
विचित्रेयं स्थितिः शक्नोमि नो भोक्तुं न वा हातुम्।।5।।

स्वतन्त्रा दूरसंस्थाऽप्यसि दृढं हृदयेन निगृहीता
ततश्चैवाऽस्म्यशक्तोरण्यबाले! त्वामहं मोक्तुम्।।6।

प्रपश्यन् लोकरावणरावणानां यन्त्रणानाट्यम्
प्रवृत्तोऽहं किमपि रामावतारसुमङ्गलं गातुम्।।7।।

दरिद्रोऽयं हि संसारस्सुखं मह्यं नु किं दत्ते?
समायातोऽस्म्यहं स्वयमेव तस्मै दुर्लभं दातुम्।।8।।

पुराणी सत्यपीयं देववाणी युवतिरेवास्ते
ध्रुवं मुखकम्बुनेच्छाम्यद्य सत्यमिदं समाध्मातुम्।।9।।

विज्ञानभवन-प्लेनरीहाल
अपराह्णे 1.15
6.1.2012 ई.

तैरना सीख गया

पहाड़ पर रहते-रहते मैंने अभ्यास कर लिया शिलाओं से (देवता की) मूर्ति गढ लेने का। बार-बार पराजय का दु:ख झेलते मैंने सीख लिया विजययताका फहराना।। 1।।

खूँखार कुत्तों को भी **अपने से अधिक** बलवानों के सामने खींस निपोरते देख, मेरे भाई। भूल ही गया मैं **कबन्धों और रावणों से डरना**! ।। 2।।

अनेक बार समन्दर में डूब जाने का भय पैदा हुआ। परन्तु उन्हीं भयों से मैंने सीख लिया भलीभाँति तैरना।। 3।।

लोगों के देखते हुए भी चतुर सुनार सोना चुरा ही लेते हैं। बस, इसी कहावत के जोर से मैंने भी तुम्हारा मन जीतना (चुराना) प्रारम्भ कर दिया।। 4।।

तुम मुझमें अनुराग (प्रेम) रखती हो। परन्तु मैं संसार से विरक्त हूँ। यह स्थिति विचित्र है। न तुम्हें भोग (अपना) सकता हूँ, न ही छोड़ सकता हूँ।। 5।।

स्वतंत्र (अकेली) एवं दूरवर्तिनी होने के बाबजूद तुम मेरे हृदय की सुदृढ़ गिरफ्त में हो। हे अरण्यबाले। इसीलिए मैं तुम्हें छोड़ पाने में असमर्थ हूँ।। 6।।

समाज को रुलाने वाले रावणों का यन्त्रणानाट्य देखते हुए ही मैं (दशरथनन्दन) राम के अवतरण का बधाई-गीत गाने को प्रवृत्त हुआ हूँ।। 7।।

यह दरिद्र संसार (समाज) भला मुझे क्या सुख देगा? मैं तो स्वयं पैदा हुआ हूँ उसे कुछ दुर्लभ वस्तु देने के लिए।। 8।।

'पुराणी' होते हुए भी यह देववाणी (संस्कृत भाषा) युवती ही है। निश्चित रूप से इस सत्य की घोषणा मैं अपने मुखरूपी शंख से करना चाहता हूँ।। 9।।

कथमपि न वार्यते

नौकाद्वयेन सिन्धुर्युगपन्न पार्यते
नहि कृत्रिमाऽनुरागैर्बन्धुस्सुधार्यते॥1

अपहाय बुद्धिगर्वं चिन्तय सखे! क्षणं
उष्ट्रो न वामनत्वं समुपेत्य हार्यते॥2॥

यत्नैः कियद्भिरेव क्षोणीतलेऽखिले
सिकताचयैर्हि भवनं क्रियते न कार्यते॥3॥

छद्मप्रवञ्चनाभिः पापोच्चयैः क्वचित्
वसताऽपि तीर्थभूमौ मृतको न तार्यते॥4॥

उत्पाद्य विघ्नसंघं कृत्वा चरित्रहननं
कस्यापि कीर्तिमार्गः कथमपि न वार्यते॥5॥

मिथ्या वचोवितानैः किं किञ्च नग्ननृत्यैः?
सत्येन हन्त लोको यदि नाम धार्यते॥6॥

न च्छुरिकया न खड्गैर्गदया न भिन्दिपालैः
हृदयं शिलीन्ध्रकम्रं वचनेन दार्यते॥7॥

क्व सुखं शमः क्व मानः स्वजनोऽन्तिके निकामं
मधुवाक् विषाक्तहृदयो यावन्न सार्यते॥8॥

यात्रापथे (दिल्ली-शिमला)
11.1.2012 ई.

अ-निवार्य

दो नावों में एक ही साथ बैठ कर सागर नहीं पार किया जा सकता। बनावटी प्रेम से भाई को नहीं सुधारा जा सकता।। 1।।

(अपने) बुद्धि के घमण्ड को दरकिनार कर मित्र! सोचो एक क्षण! मात्र बौना बन कर ऊँट की चोरी नहीं की जा सकती।। 2।।

चाहे हजार प्रयत्न करो, परन्तु समूचे पृथ्वीतल पर बालू के ढेर से मकान नहीं बनाया-बनवाया जा सकता।। 3।।

किसी भी तीर्थ-क्षेत्र में रहते हुए छद्म एवं प्रबञ्चनाओं से अथवा पापाचार से पुरखों को तारा नहीं जा सकता।। 4।।

विघ्न-बाधा का पहाड़ खड़ा कर तथा चरित्र-हनन करके किसी का कीर्तिमार्ग, किसी भी प्रकार अबरुद्ध नहीं किया जा सकता।। 5।।

झूठे वागाडम्बरों से क्या? और नंगी नाच से भी क्या? ओह! संसार तो मात्र सत्य के ही बल पर टिका है।। 6।।

न छुरी से, न तलवार से, न गदा से और न ही भिन्दिपाल (बन्दूक) से! शिलीन्ध्र-सरीखा कोमल हृदय तो बस बातों (अरुन्तुद आक्षेप) से ही फट जाता है।। 7।।

मीठी वाणी बोलने वाला किन्तु विष-मुझे हृदय वाला तथा निरन्तर साथ रहने वाला स्वजन जब तक बाहर नहीं निकाला जाता तब तक कहाँ रहा सुख, कहाँ रही शान्ति और कहाँ रहा मान।। 8।।

तेऽपि स्वदन्ते

अहो कृमयोऽपि निःश्वसितुं यतन्ते
मनुष्यादप्यधिकमिह भीस्तदन्ते॥1॥

न तेषां काऽपि गृहनिर्माणचिन्ता
तथापि क्लिष्टविश्रामं लभन्ते॥2॥

निजक्षुत्तृट्निवारणतोऽपि पूर्वम्
परेषामेव ते भक्ष्याः क्रियन्ते॥3॥

कियच्छ्वोभाविनी तत्प्राणयात्रा?
स्वयं ते नैव विज्ञातुं क्षमन्ते॥4॥

न तेषां शात्रवं नो चापि मैत्री
तथाप्युभयोर्हि परिणामं सहन्ते॥5॥

प्रजायन्तां नु तीर्थे कच्चरे वा
किमन्तरमितरथा ते संश्रयन्ते॥16॥

अमीषां भिद्यतां योनिश्च कामम्
समस्यास्तेऽपि नृणामनुहरन्ते॥7॥

भवेत्पञ्चषदिनायत्तं तदायुः
तदवधावेव दुःखसुखैर्म्रियन्ते॥8।

न तेषां जीवनेच्छा किञ्चिदूना
विपाकं कर्मणां तेऽपि स्वदन्ते॥9॥

पूर्वाह्णे 11.06
मकरसङ्क्रान्तिः, शिमला।
आवासः, 14.1.2012 ई.

वे भी भोगते हैं

आश्चर्य है कि कीड़े-मकोड़े भी साँस भरने का यत्न करते हैं। मनुष्य से भी कहीं अधिक भय होता है उनके भीतर।। 1।।

(यद्यपि) उन्हें घर बनाने की कोई चिन्ता नहीं होती, तथापि बड़ी मुश्किल से वे विश्राम कर पाते हैं।। 2।।

अपनी भूख और प्यास मिटाने से भी पहले वे दूसरों के ही भक्ष्य बन जाते हैं।। 3।।

कितनी अनिश्चित होती है उनकी जिन्दगी। वे स्वयं नहीं जान पाते इसे।। 4।।

न उनकी (किसी से) शत्रुता होती है और न ही मित्रता! फिर भी वे सहते हैं दोनों का ही परिणाम।। 5।।

चाहे वे (पवित्र) तीर्थ में पैदा हों चाहे (गन्दे) कचरे में। किसी भी एक स्थिति में इन्हें कौन (विशिष्ट) लाभ मिल जाता है।। 6।।

भले ही उनकी योनि भिन्न हो जाए (कृमि से जलचर, जलचर से नभचर बन जाएँ) परन्तु उनकी भी समस्याएँ निद्रा, भय, मैथुनादि, मनुष्यों जैसी ही हैं।। 7।।

भले ही उनकी आयु (मात्र) पाँच-छह दिन की ही हो, इस (छोटी) अवधि में भी वे सुख या दुःख ही भोगते हैं।। 8।।

उनकी भी जीवन की इच्छा कुछ कम नहीं होती। अपने (अच्छे-बुरे) कर्मों का दण्ड वे भी अनुभव करते हैं।। 9।।

सौख्यं ममैतदेव

भवसागरं तितीर्षुर्ननु पर्णनौकयाऽसौ
विचराम्यहं पदातिः सौख्यं ममैतदेव॥1॥

क्रोशति श्रृगालकल्पस्स हि शक्तिधनमदान्धः
मम वाचि सिंहनादः सौख्यं ममैतदेव॥2॥

स्वीयाश्रमे स भुङ्क्ते युवतीः प्रलोभ्य रात्रौ
रक्तोऽस्म्यहं कलत्रे सौख्यं ममैतदेव॥3॥

अर्बुदपतिस्स जीर्णः कर्कटरुजा यमेन
स्वस्थोऽस्म्यहं दरिद्रः सौख्यं ममैतदेव॥4॥

विधवाऽस्ति तस्य कन्या सौन्दर्यशालभञ्जी
अहमात्मजाविहीनः सौख्यं ममैतदेव॥5॥

धनमोषणेन मन्त्री कारां निषेवते सः
धनसङ्कटे सदाऽहं सौख्यं ममैतदेव॥6॥

श्रुत्वा तदीयनाम द्विष्टा हसन्ति लोकाः
प्रणमन्ति मां विनीताः सौख्यं ममैतदेव॥7॥

रोहन् विभुत्वशैले स पपात सच्चरित्रैः
विचराम्यहं धरण्यां सौख्यं ममैतदेव॥8॥

वर्णोज्ज्वलोऽपि लोके स विनिन्दितो बकोटः
कृष्णोऽपि कोकिलोऽहं सौख्यं ममैतदेव॥9॥

मेरा सुख

वह पत्तों से बनी नौका से भवसागर पार करने का इच्छुक है और मैं पाँव पयादे ही विचरण कर रहा हूँ। मेरा यही सुख है।। 1।।

वह शक्ति और धन के मद में अन्धा होकर सियार की तरह चिल्लाता (हुँआ-हुँआ करता) है। परन्तु मेरी वाणी में **सिंहनाद** है। यही मेरा सुख है।। 2।।

अपने (एकान्त) आश्रम में वह प्रलोभन देकर रात में युवतियों का भोग करता है। मैं अपनी **अर्धाङ्गिनी** में अनुरक्त हूँ। यही मेरा सुख है।। 3।।

वह है अरबपति, परन्तु है यम-सरीखे कैंसर रोग से जीर्ण (मरणोन्मुख) मैं हूँ तो दरिद्र, परन्तु (प्रभुकृपा से) स्वस्थ हूँ। यही मेरा सुख है।। 4।।

रूप-सौन्दर्य की गुड़िया जैसी उसकी कन्या (दुर्भाग्य से) विधवा है और मैं आत्मजा-विहीन हूँ (यह असह्य दुःख नहीं देखा) यही मेरा सुख है।। 5।।

मंत्री होते हुए भी धन चुराने के कारण वह जेल की हवा खा रहा है। मैं हूँ कि सदैव धन-संकट में रहता हूँ। यही मेरा सुख है।। 6।।

उसका नाम सुनते ही, द्वेष करने वाले समाज के लोग हँसने लगते हैं। मुझे विनम्रभाव से प्रणाम करते हैं। यही मेरा सुख है।। 7।।

ऐश्वर्य के पर्वत पर चढ़ते ही चढ़ते वह प्रशंसनीय चरित (आचरण) खो बैठा। मैं धरती पर ही स्थित हूँ, यही मेरा सुख है।। 8।।

वर्ण (रूप-रंग) से उज्ज्वल होते हुए भी वह लोक में विनिन्दित बक (बगुलाभगत) ही बना रहा। परन्तु वर्ण से काला होते हुए भी मैं कोकिल बना। यही मेरा सुख है।। 9।।

तालस्तरुः खचुम्बी हीनो द्रुमान्तरैस्सः
विहगाश्रयो वटोऽहं सौख्यं ममैतदेव॥10॥

सकृदपि हतोऽवलेहो जातस्त्वमाम्र! सोऽहम्
कलमो भवामि शुभ्रः सौख्यं ममैतदेव॥11॥

अपराह्णे 1.20, 15.1.2012
आवासः शिमला

अन्यान्य वृक्षों (की संगति) से हीन वह गगनचुम्बी तालतरु (ताड़) बना। परन्तु मैं (हजारों) पंछियों का आश्रय-दाता बरगद बना। यही मेरा सुख है।। 10।।

हे आम्रफल! एक बार भी जो तुम पिसे तो बस चटनी बन गए (बेकार हो गए) परन्तु मैं तो था उजला धान! (जितना ही कूटा गया, उतना ही निखरा) यही मेरा सुख है।। 11।।

न किं प्राणोऽस्मि जातः?

जगन्निर्वर्ण्य पाषाणोऽस्मि जातः
अमृत्वैवाऽप्तनिर्वाणोऽस्मि जातः॥1॥

समे ज्ञातुं यतन्ते शुद्ध्यशुद्धी
सुवर्णानां कृते शाणोऽस्मि जातः॥2॥

गिरीशात्स्वार्थसिद्धिर्देवतानाम्
वृथा दग्धुं कुसुमबाणोऽस्मि जातः॥3॥

शिवोऽहं गल्लवादनमात्रतुष्टः
क्षणेनार्पितपरित्राणोऽस्मि जातः॥4॥

न मात्रा यस्य निश्चेतुं हि शक्या
स वाक्कारुण्यपरिमाणोऽस्मि जातः॥5॥

पठित्वा देववाणीमिह धरित्र्याम्
मनुष्येष्वद्य गीर्वाणोऽस्मि जातः॥6॥

ललितगीते हि विलसितदृष्टिकल्पे
मृगाक्षीणामहो काणोऽस्मि जातः॥7॥

शयेऽहं शारदोत्सङ्गे सलीलम्
तदङ्गुलिजन्यनिक्वाणोऽस्मि जातः॥8॥

गतासुं पुनरुदयितुं देववाणीम्
भिराजोहं न किं प्राणोऽस्मि जात[1]ः॥9॥

अपराह्णे 5.44
आवासः शिमला
15.1.2012 ई.

---

1. भिराजोऽहम् इत्यत्र आद्यकारस्य लोपः। वष्टि भागुरिरल्लोप मित्यस्य विडम्बनमात्रं काव्यानुरोधात्।

क्या प्राण नहीं बना?

संसार की हालत देख कर पथरा गयाहूँ मैं। बिना मरे ही **'निर्वाण'** की स्थिति में पहुँच गया हूँ।। 1।।

सब लोग शुद्धि एवं अशुद्धि ही जानना चाहते हैं। सुवर्णो (की परीक्षा) के लिए **शाणोपल** (कसौटी का पत्थर) बन गया हूँ मैं।। 2।।

देवाधिदेव शिव से (अपने) स्वार्थ की सिद्धि तो देवताओं को होनी थी (तारकासुर के वधार्थ) परन्तु व्यर्थ ही जल मरने के लिए कुसुमशर (काम) मैं पात्र बन गया ।। 3।।

गाल बजाने मात्र से रीझने वाला शिव (भोला भण्डारी) हूँ मैं। क्षण भर में ही सुरक्षा प्रदान कर देता हूँ।। 4।।

जिसकी मात्रा का निश्चय-किया जाना ही असम्भव है वही वाणी की करुणा का परिमाण हूँ मैं।। 5।।

इस धराधाम पर देववाणी संस्कृत का अध्ययन कर आज मनुष्यों में 'देवता' बन गया हूँ।। 6।।

विलासभरी दृष्टि (मादक चितवन) के समान ललित गीत-रचनामें मृगनैनी (नायिकाओं) की कनखी (अपाङ्गभङ्ग) बन गया हूँ।। 7।।

माँ शारदा की गोदी में लीलापूर्वक शयन करता हूँ। उनकी उँगलियो से उत्पादित (वीणा की) झङ्कार बन गया हूँ मैं।। 8।।

निष्प्राणभूता सुरभारती को पुनरुज्जीवित करने के लिए मैं 'अभिराज' क्या (उसका) 'प्राण' नहीं बन गया हूँ।। 9।।

क इमे जनाः?

इह शासकीयसभाङ्गणे विदुषां प्रथमपङ्क्तौ स्थिताः
धवलाङ्गवस्त्रसुशोभिताः क इमे जनाः क इमे जनाः॥1॥

न कदापि दृष्टाः परिषदि प्रथिता न शास्त्रसभागृहे
सौमिल्लभासयशोधराः क इमे जनाः क इमे जनाः॥2॥

ताम्बूलभृतगल्लान्तरा वदितुं क्षमा ध्रुवमुन्मुखम्
प्रविकीर्णशोणितसीकराः क इमे जनाः क इमे जनाः॥3॥

कस्मिन्नु तक्षशिलायने कस्मिंश्च नालन्दाङ्गणे?
कैर्देशिकैरध्यापिताः क इमे जनाः क इमे जनाः॥4॥

किमिमे विकृतिपारङ्गता मालाजटाघनपाठिनः?
ननु सामगानविशारदाः क इमे जनाः क इमे जनाः॥5॥

नैयायिका मीमांसका वेदान्तिनो लौकायताः
किं सौगता यदि वाऽर्हताः क इमे जनाः क इमे जनाः॥6॥

किं दीर्घदीर्घतराभिधावादिन इमे मुकुलानुगाः
लक्षितुमलङ्कृतिमक्षमाः क इमे जनाः क इमे जनाः॥7॥

आनन्दवर्धनवर्त्मनाऽप्यर्थं सहृदयश्लाघितम्
परिचाययितुमग्रेसराः क इमे जनाः क इमे जना॥8॥

अथवोल्लिखितविदुषाञ्चये कुत्रापि नेमे बहुमताः
आकृतिगणोत्तमपण्डितास्त इमे जनास्त इमे जनाः॥9॥

अपराह्णे 6.31
आवासः शिमला
15.1.2012 ई.

कौन हैं ये लोग?

यहाँ शासकीय सभाभवन में विद्वानों की प्रथम पंक्ति में बैठे हुए, धवल अंगवस्त्रों से सुशोभित ये कौन लोग हैं? कौन लोग हैं ये? ।।1।।

न ये कभी संगोष्ठियों में दिखाई पड़े, न ही शास्त्र-सभाभवनों में प्रसिद्ध रहे। (महाकवि) **सौमिल्ल एवं भास** जैसी कीर्ति को ओढ़ने वाले ये लोग कौन हैं।। 2।।

पान के बीड़े से भरे गलफड़े वाले (तथा पीक चू जाने के भय से) निश्चित रूप से मुँह ऊपर करके ही बोल पाने में समर्थ, पीक के लाल सीकरों को बिखेरने वाले ये लोग कौन हैं।। 3।।

किस **तक्षशिला** के परिसर में अथवा नालन्दा की अँगनाई में, किन आचार्यों द्वारा पढ़ाए गए हैं ये लोग।। 4।।

क्या ये लोग **वेद-विकृतियों** के पारंगत हैं? माला, जटा अथवा धनपाठी विद्वान् हैं? या फिर सामगान में विशारद हैं? कौन हैं ये लोग? ।। 5।।

क्या ये नैयायिक हैं? मीमांसक हैं? वेदान्ती हैं? चार्वाक मतानुयायी हैं अथवा बौद्ध-जैन दार्शनिक हैं? कौन हैं ये लोग।। 6।।

क्या अभिधा शक्ति के **दीर्घ-दीर्घतर व्यापार** की वकालत करने वाले आचार्य मुकुलभट्ट के शिष्य हैं अथवा अलंकार की सही व्याख्या न कर पाने वाले लोग हैं? कौन हैं आखिर ये लोग।। 7।।

अथवा **सहृदय-श्लाध्य काव्यार्थ** को आचार्य आनन्दवर्धन की शैली में समझाने के लिए उतावले लोग हैं? कौन हैं ये।। 8।।

या फिर, ऊपर गिनाई गई पण्डितों की कोटियों में ये कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं हैं बस, आकृति (वेषभूषा) मात्र से उत्तम पण्डित लग रहे हैं! कौन हैं ये लोग।। 9।।

सप्रमाणं लोकयध्वम्

स्वयं जातोऽस्मि सृष्टेः प्रश्नभूतः
समाधानं मदीयं मार्गयध्वम्॥1॥

चतस्रस्सन्ति सृतयः पुरस्सर्तुम्
कृते कस्याश्चिदपि भोः संवदध्वम्॥2॥

दृषद्यस्मिन्निलीनाः सन्ति देवाः
प्रयत्नांस्तान् पुरस्कर्तुं कुरुध्वम्॥3॥

यतो राष्ट्रं विभक्तं, सुस्थिरास्ते
फलं सम्प्रति सुजनताया लभध्वम्॥4॥

न भक्तिर्नाऽपि निष्ठा नोऽभिमानः
चरित्रं तादृशां ज्ञातुं यतध्वम्॥5॥

भवेयुः कति नु खण्डा राष्ट्रभूमेः?
क्षणं सद्बुद्धिमन्तश्चिन्तयध्वम्॥6॥

स्वगेहे दुत्कृतो यो हि श्वकल्पः
तदीयं सिंहनादं संश्रृणुध्वम्॥7॥

विरचिताः प्रावृषा श्वभ्राः सहस्रम्
पथा केनेह यानान्यानयध्वम्॥8॥

समृद्धे घूकराज्ये राजहंसान्
श्रृणोत्येवेह को मा चर्चयध्वम्॥9॥

वदति मायां महास्थगिनीं कबीरः
तदधुना सप्रमाणं लोकयध्वम्॥10॥

अपराह्णे 2.21
आवासः, शिमला
16.1.2012 ई.

सप्रमाण देखिये?

मैं स्वयमेव (समूची) **सृष्टि का प्रश्न बन** कर पैदा हुआ हूँ। मेरा समाधान खोजें आप लोग।। 1।।

आगे बढ़ने के लिए चार राहे हैं। किसी एक पर चलने के लिए बन्धुओं! सहमति बनाएँ।। 2।।

यदि इस पत्थर में देवगण छिपे बैठे हैं तो उन्हें बाहर ले आने के लिए प्रयत्न करें।। 3।।

जिनके कारण (यह) राष्ट्र दो खण्डों में विभक्त हो गया वे (यहीं) **सुस्थिर** हैं। अब (अपने) सौजन्य का फल चखिए।। 4।।

जिनकी (राष्ट्र के प्रति) न भक्ति है, न निष्ठा है और न ही (उसका) स्वाभिमान है ऐसे लोगों का चरित्र जानने का यत्न करें।। 5।।

राष्ट्रभूमि (भारत) के (और) कितने खण्ड होने चाहिए? श्रेष्ठ बुद्धि वाले लोग एक क्षण के लिए विचार तो करें।। 6।।

अपने घर में जो कुत्ते की तरह दुत्कारा जाता है, उसका (भारत के प्रति) **सिंहनाद** तो सुनें।। 7।।

बारिश के कारण हजारों गड्ढे बना दिए गए हैं। अब किस रास्ते से यान यहाँ लाए जाँय?।। 8।।

उल्लुओं के समृद्ध राज्य में राजहंसों को सुनता ही कौन है? यहाँ तो (इसकी) चर्चा ही न करें।। 9।।

कबीर माया को महाठगिनी बताते हैं[1]। अब उसी तथ्य को प्रमाण सहित देखें।। 10।।

---

1. माया महाठगिनी हम जानी!

अन्ना हजारे

हुबल्यां हलद्वान्यां हरिद्वारे
क्व वा नो चर्चितोऽस्त्यन्ना हजारे॥1॥

समुदियाय प्रतीच्यां प्रथमवारम्
प्रतपनः कोऽप्यहो गहनान्धकारे॥2॥

यदीयां भैरवीं मूर्तिं पिबन्तः
समे लिल्युः कपिलकपिला अगारे॥3॥

अयं को भारते जातोऽद्वितीयः
न रज्यति यो धने, भवने, न दारे॥4॥

विनाऽग्निकणं तृणञ्च विनापि तैलम्
समुद्दीप्तः कृशानुर्यत्प्रचारे॥5॥

द्रुतं परिवर्तिताऽभूद्राजनीतिः
पतिं दृष्ट्वाऽसती यद्वन्नु जारे॥6॥

प्रहृष्टा राष्ट्रवासिन ऊचुरुच्चैः
जय त्वं चण्डिके! जय कैटभारे॥7॥

पुनः स्मरदाहसन्दर्भोऽवतीर्णः
विषमनेत्रं पुनर्ज्वलितं पुरारेः॥8॥

कदाऽऽयास्यति कुशासननाशसन्ध्या?
रटन्त्येवं जनाः सततं मुरारे॥9॥

अपराह्णे 3.28
आवासः, शिमला
16.1.2012 ई.

अन्ना हजारे

हुबली, हलद्वानी और हरिद्वार! **अन्ना हजारे** की चर्चा कहाँ नहीं हो रही है।। 1।।

आश्चर्य है कि पहली बार, घने अन्धकार **में कोई सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हुआ है**।। 2।।

जिसकी भैरव मूर्ति को देख कर ही सारे के सारे (वैरी) भय से पीले हो कर (अथवा कपिलसिब्बल आदि) घर में दुबक गए।। 3।।

भारत में यह कौन **अ-द्वितीय** (विलक्षण) पैदा हो गया जो न धन में आसक्त है, न घर में, न घरनी में।। 4।।

बिना आग की चिंनगारी के, बिना घास-फूस के और बिना ही तेल के धधक उठी आग जिसके प्रचार में।।5।।

राजनीति द्रुतगति से परिवर्तित हो उठी, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री (फट्ट से) जार के प्रति पाल्हा बदल देती है पति को देखकर।। 6।।

हर्षविह्वल होकर राष्ट्रवासी जोर-जोर से चिल्लाने लगे- माँ चण्डिके! तुम्हारी जय हो! कैटभारि नारायण! तुम्हारी जय हो।। 7।।

एक बार पुनः **कामदाह का सन्दर्भ** घट गया। पुरारि शिव का तृतीय नेत्र पुनः जल उठा।। 8।।

कुशासन के नाश की सन्ध्या कब आएगी? हे प्रभो! लोग निरन्तर यही रट रहे हैं।। 9।।

दलितपुत्री

दलितपुत्री दलितपुत्री दलितपुत्री
साम्प्रतं कोट्यर्बुदानां योजयित्री॥1॥

शतमिताः स्तम्बेरमाः सन्त्याश्मनास्ते
प्रतिगजं लक्षाधिकस्य विनोदयित्री॥2॥

अभिनवा वागम्भृणेः कन्याऽस्ति जाता
प्रथितचातुर्वर्ण्य-भेद-विभेदयित्री॥3॥

सा हि राष्ट्री चिकितुषी प्रथमाऽस्ति होत्री
मन्त्रिपददाने वसूनां सङ्ग्रहीत्री॥4॥

लौहमपि संस्पृश्य हेम करोति सद्यः
कच्चरे हेम्नामपि प्रक्षेपयित्री॥5॥

परिचिनोति न चाक्षरं लिखितं पठति सा
विश्वविद्यालयशतानां संविधात्री॥6॥

श्रुताऽऽसीन्मयकाऽपि काशी ब्राह्मणानाम्
स्वत्रिशूलाऽग्रेऽद्य तस्याः स्थापयित्री॥7॥

सन्ति रजिया चाँदबीबी सा च लक्ष्मीः
किन्न सा पङ्क्तावहो तुर्या भवित्री॥8॥

गर्ज मूढ! क्षणं यावन्मधु पिवामि
इति स्वीयान् समरशत्रून बोधयित्री॥9॥

गता मर्यादा समं रामेण राष्ट्रे
सा हि निर्मर्यादशासनसंविधात्री॥10॥

सन्ध्या 6 बजे
आवासः, शिमला
16.1.2012 ई.

दलितपुत्री

दलितपुत्री, दलितपुत्री, दलितपुत्री, आज है (वह) करोड़ों अरबों की योजयित्री (मालकिन)।। 1।।

सैकड़ों तो हाथी है उसके **पत्थर के** और एक-एक हाथी पर (कई) लाख से अधिक लगाए हैं उसने।। 2।।

अम्भृणि ऋषि की नई वाक्नाम्नी कन्या पैदा हुई है जो वेदपुराण-प्रसिद्ध चातुर्वर्ण्य के भेद को भी मिटा देने वाली है।। 3।।

वह है राष्ट्री, चिकितुषी (विदुषी) और प्रथम होत्री। मंत्रि-पद प्रदान करने की एवज में धन ऐंठने वाली।। 4।।

लोहे को भी छूकर तत्काल सोना बना देती है। और उन सुवर्णों को भी (रुष्ट होने पर) कचरे में फेंक देती है।। 5।।

अक्षर भी नहीं पहचानती। दूसरे का लिखा पढती है वह। फिर भी, सैंकड़ों विश्वविद्यालयों की संस्थापिका है।। 6।।

मैंने भी सुना था कि काशी नगरी ब्राह्मणों की है। परन्तु आज तो उस काशी (अर्थात् ब्राह्मणों) को भी अपने त्रिशूल की नोक पर कर रखा है उसने! ।। 7।।

(पहले भी) रजिया बेगम, चाँदबीबी और लक्ष्मीबाई राज कर चुकी हैं। उस पंक्ति में क्या वह 'चौथी' नहीं बन सकती है।। 8।।

मूढा! गर्जन कर ले, जब तक मैं क्षण भर के लिए मदिरापान कर रही हूँ। यूँ ललकार रही है वह अपने समर-शत्रुओं को।। 9।।

इस भारत राष्ट्र में तो मर्यादा (भगवान्) राम के ही साथ चली गई। यह दलितपुत्री तो मर्यादा-रहित शासन चलाने वाली है।। 10।।

निर्बोधं शयिष्ये

व्यथाभिः पक्वोऽस्मि मा मां दृढं पीडय
ईषदपि नखरक्षतं नाऽहं सहिष्ये॥1॥

मेऽपि पुटपाकप्रतीकाशास्ति करुणा
दण्डकैकान्ते क्वचित्तां प्रकटयिष्ये॥2॥

क्षतान्येतावन्ति सोढान्यङ्गनिवहे
नूतनस्य कृतेऽवकाशं नो जनिष्ये॥3॥

मम न सम्बन्धो दविष्ठोऽप्यस्ति येन
तद्दुरितफलमर्पितं चेत् किं करिष्ये॥4॥

मृत्तिकाऽहं त्वं कुलालो निर्मिमीषुः
किमपि रूपं देहि तच्छिरसा ग्रहीष्ये॥5॥

अप्रतीकारस्य दण्डं देहि नेदृक्
अन्यथा पापात्मनां चरितं श्रयिष्ये॥6॥

धिङ् निसर्गं यन्नदग्धो वाऽपि दग्धः
सुरभि-कर्पूरोऽस्म्युभयथाऽप्यातनिष्ये॥7॥

धिय्यसत्यां दुःखसुखयोः किं महत्वम्?
जीवयोनिं निर्धियं पुरतो हरिष्ये॥8॥

जागराभिर्जीवनं वीतं निकामम्
साम्प्रतं जगदीश! निर्बोधं शयिष्ये॥9॥

अपराह्णे 6.56
आवासः शिमला
27.1.2012 ई.

अनन्तनिद्रा

व्यथाओं में पक गया हूँ। मुझे जोर से मत दबाओ। जरा सी भी नाखून की खरोंच नहीं सह पाऊँगा।। 1।।

मेरी भी करुणा (भगवान् राम की तरह) **पुटपाक** जैसी ही है। **कहीं दण्डकारण्य के एकान्त में** उसे प्रकट करूँगा।। 2।।

अपने अंग-प्रत्यंग में इतने घाव झेले हैं मैंने कि नए घाव के लिए (शरीर में) कोई स्थान तक नहीं दे पाऊँगा।। 3।।

जिससे मेरा दूर-दूर तक का भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा यदि उसके (द्वारा आचरित) पाप का फल मुझे भोगना पड़ गया तो क्या करूँगा।। 4।।

मैं हूँ माटी और तुम हो निर्माण की इच्छा वाले कुम्हार! कोई भी रूप दे दो मुझको (विवश हूँ) उसे सिर माथे लगा लूँगा।। 5।।

प्रभो! बदला न ले सकने का ऐसा दण्ड तो मत दो। अन्यथा मैं भी पापात्माओं का ही आचरण प्रारंभ कर दूँगा।। 6।।

बुरा हो स्वभाव का कि चाहे स्वाभाविक स्थिति में रहूँ अथवा जलाया जाऊँ! दोनों ही प्रकारसे वातावरण को मँहका दूँगा (क्योंकि) सुगन्धित कपूर हूँ।। 7।।

यदि बुद्धि (विवेक) ही न हो तो दु:ख और सुख होने का क्या महत्त्व है? फिर तो अगले जन्म में मैं भी ऐसी ही जीवयोनि प्राप्त करना चाहूँगा जिसमें बुद्धि का विलास न हो।। 8।।

सारा जीवन जागरणों में ही सिरा गया। हे जगदीश! अब जागरण-रहित (अनन्त) निद्रा में सोऊँगा।। 9।।

पृच्छतितरां रसिकः

बृहत्यः कर्षिता रेखा मया लघ्वीर्लघूकर्तुम्
पराभवदर्पणेऽपश्यं छविं नो जातु सांशयिकः॥1॥

सदा हंसासनावात्सल्यवृष्ट्या निर्मलोऽभूवम्
कदाऽप्यासं न वा निर्लेखनीको नाऽपि निर्मसिकः॥2॥

चलन्नासं समग्रे जीवने करवालधारायाम्
समारम्भं नु तत् सन्दर्शयतु चेत्कोऽपि साहसिकः॥3॥

दवाग्नौ शीतलाम्भोऽहं समो विषमे, मृदू रोषे
स्थिरोऽस्थैर्ये, हसन् रुदितेऽधिकिञ्चनतं महाधनिकः॥4॥

स्वकीयैर्बन्धुभिः पुष्टैः कृपान्वितकैस्समाराध्यैः
हतो, रुद्धोऽन्यथाऽवमतः कृतस्सभ्यादहं सभिकः॥5॥

नृशंसाः पापकर्माणोऽभवंस्ते, तेषु नो चाहम्
कदाचिच्चिन्तये कस्मिन्नु नरके को भवेत्पथिकः॥6॥

अरण्ये कण्टकिनि दीर्णं ममाङ्गं ते पुनर्वस्त्रम्
रहस्यं त्वस्य धीमन्तो विदन्त्यद्धा, न जाङ्गलिकः॥7॥

तिमिङ्गिलनक्रशिशुमारादिभिः पर्याकुले सिन्धौ
तरन्नासं कथं निर्विघ्नमिति पृच्छतितरां रसिकः॥8॥

कुतोऽहं प्रारभे स्वीयां कथामुपसंहरान्यथवा
य एवैत्यन्तिकं मे जायतेऽसौ द्राक्कथंकथिकः॥9॥

अपराह्णे 1.30
खागा स्टेशन 19.1.2012 ई.

रसिक-जन पूछते हैं

छोटी रेखाओं को (सचमुच) छोटी सिद्ध करने के लिए मैंने उनके साथ बड़ी रेखाएँ खींच दीं। **परन्तु संशयालु बन कर मैंने कभी भी पराजय के दर्पण में अपना मुँह नहीं देखा॥** 1॥

मैं सदैव हंसवाहिनी की वात्सल्य-वृष्टि से तरल बना रहा। कभी भी मैं लेखनी-विहीन अथवा स्याही-विहीन नहीं रहा॥ 2॥

सारी जिन्दगी तलवार की धारपर यात्रा करता रहा। कोई साहसिक (माई का लाल) वैसा करके तो दिखा दे॥ 3॥

दावानल में शीतल जल बन बरसा मैं! विषमों (टेढ़ों) में सम (सीधा) तथा रोष में मीठा रहा मैं! अस्थिरता में स्थिर, रोते हुओं में हँसता हुआ और दरिद्रता में भी महाधनी रहा हूँ मैं॥ 4॥

अपने द्वारा पाले-पोसे गए भाई-बन्धुओं से, कृपान्वितों से तथा समाराध्यों से मारा गया, रोका गया, विविध प्रकार से अपमानित किया गया और **सभ्य से सभिक** (जुआरी) तक बना दिया गया॥ 5॥

वे सबके सब मेरे प्रति नृशंस एवं पापाचारी बन बैठे। परन्तु उनके प्रति मैं वैसा नहीं बना। कभी सोचता हूँ कि उनमें से कौन, किस नरक (रौरव, कुम्भीपाक, असिपत्र, लालाभक्ष) का पथिक होगा॥ 6॥

काँटों से भरे अरण्य में तुम्हारे तो (केवल) वस्त्र ही फटे, मेरे तो अंग क्षत-विक्षत हो उठे। अब इस रहस्य को तो परमार्थतः बुद्धिमान् लोग ही समझेंगे न कि कोई (अरण्यवासी) मदारी॥ 7॥

तिमिङ्गिल (ह्वेल) घड़ियाल, शिशुभार आदि (सुइँस) से पर्याकुल समुद्र में मैं कैसे निर्विघ्न तैरता रहा? यह बात सहृदय (मित्र) जन पूछते ही हैं॥ 8॥

अपनी रामकहानी मैं कहाँ से प्रारंभ करूँ? अथवा किस बिन्दु पर समाप्त करूँ? जो ही मेरे पास आता है वहीं उत्कण्ठापूर्वक **'कथंकथिक'** (यह कैसे हुआ—ऐसा पूछने वाला, कथा-श्रोता) बन जाता है॥ 9॥

तूर्णं तरिष्ये

प्रसर्पन् प्रसर्पन् विरोढुं यतेऽहं
महीध्रोत्तमाङ्गे पदं स्थापयिष्ये॥1॥

च्यवन्नस्मि बिन्दुक्रमेणैव कामम्
ध्रुवं प्राणयात्राघटं पूरयिष्ये॥2॥

कथां चारुकादम्बरीमारभेऽहम्
न तामर्धमार्गेऽधुना संहरिष्ये॥3॥

जबाला जबाला जबालासुतोऽहम्
शतं कोऽपि पृच्छेत्स्फुटं व्याहरिष्ये॥4॥

वरं वामनीभूय जातोऽस्मि पश्चात्
पुरस्सृत्य वैरोचनिं निग्रहीष्ये॥5॥

कनिष्ठाऽस्म्यहं सम्मताऽप्यङ्गुलीनाम्
स सर्वोत्तमो, यन्नु सङ्केतयिष्ये॥6॥

हतोऽसौ, नरः कुञ्जरो वऽश्वथामा[1]
स्मरन् स्वाऽभिमन्युं मुदा घोषयिष्ये॥7॥

विपश्चिन्मणिस्सन्नयज्ञोऽस्म्यहं भोः
समुत्प्रेक्ष्य कालं रहस्यं वदिष्ये॥8॥

क्षिपाऽम्भोनिधौ रामनामाङ्कितं माम्
गुरुश्शैलखण्डोऽपि तूर्णं तरिष्ये॥9॥

अपराह्णे 3.05
बमरौली स्टेशन
19.1.2012 ई.

---

1. अश्वत्थामा इत्यस्य अश्वथामा। छन्दोऽनुरोधात् प्रयोगस्वातन्त्र्यम्।

तैर जाऊँगा

खिसकते ही खिसकते चढ़ने का यत्न कर रहा हूँ मैं। पर्वत की चोटी पर (एक दिन) पैर (अवश्य) जमा दूँगा।। 1।।

भले ही मैं बूँद-बूँद कर रिस रहा हूँ। निश्चित रूप से जीवनरूपी (रिक्त) घट को भर दूँगा।। 2।।

मैं भी मनोरम कादम्बरी-कथा को प्रारंभ कर रहा हूँ। लेकिन अबकी बार इसे **आधे रास्ते** में समाप्त नहीं करूँगा।। 3।।

जबाला, जबाला, जबाला का ही बेटा हूँ मैं, सौ बार पूछे कोई, बेधड़क सच ही बोलूँगा।। 4।।

भले ही 'वामन' बनकर मैं (भाइयों में सबसे) पीछे पैदा हुआ हूँ, परन्तु **सबसे आगे बढ़कर**, बिरोचन-पुत्र बलि का निग्रह मैं ही करूँगा।। 5।।

सारी अँगुलियों में, आदरणीय 'कनिष्ठिका' हूँ मैं। जिसे संकेतित कर दूँगी वही सर्वोत्तम (कनिष्ठिकाधिष्ठित) माना जाएगा।। 6।।

मारा गया वह अश्वत्थामा! (किन्तु निश्चित नहीं कि इस नाम वाला) मनुष्य अथवा हाथी! अपने (प्रियपुत्र) अभिमन्यु का स्मरण करते हुए मैं (युधिष्ठिर) प्रसन्नतापूर्वक वह (दुतरफा) घोषणा करूँगा।। 7।।

बन्धुओ! **विपश्चिन्मणि** होते हुए श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ भी (राजनेता) हूँ मैं। उचित समय देख कर ही रहस्य को प्रकाशित करूँगा।। 8।।

रामनाम से अंकित मुझको फेंक दो समुद्र में। भारी-भरकम पाषाण-खण्ड हूँ! फिर भी त्वरित गति से तैरूँगा (डूबूँगा नहीं)।। 9।।

सीमाऽपि नोऽनिश्चिता

काममग्निर्दहत्यन्तरे मामके
किन्तु तद्दाहसीमाऽपि नोऽनिश्चिता।1॥

वारयन्त्येव बाणप्रहारानहो
किन्तु सन्नाहसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥2॥

भूरि वर्षन्ति शम्भोः कृपावारिदाः
किन्तु तद्वृष्टिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता।3॥

किन्न शक्त्या कवीन्द्राः सृजन्त्यद्भुतम्।
किन्तु तत्सृष्टिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥4॥

बोधयत्येव शब्दोऽर्थजातं ध्रुवम्
किन्तु तच्छक्तिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥5॥

स्वार्थमालोकते नैव भक्तोऽर्पितः
किन्तु तद्भक्तिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥6॥

सैरिभो सम्बिभेत्येव कण्ठीरवात्
किन्तु तद्भीतिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥7॥

सत्पथं निर्दिशत्येव कृच्छ्रे सुहृत्
किन्तु तन्नीतिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥8॥

संविधत्तेऽभिराजो न कस्यादरम्?
किन्तु तत्प्रीतिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥9॥

प्रीणयत्येव सभ्यानसौ गीतिभिः
किन्तु तद्गीतिसीमाऽपि नोऽनिश्चिता॥10॥

रात्रिः 10.12
संस्थान-अतिथिकक्षः, नईदिल्ली
14.4.2012 ई.

सीमा अनिश्चित नहीं

माना कि मेरे अन्तराल में आग धधक रही है, परन्तु उसके **दाह** (जला पाने) की सीमा भी तो है (वह असीम नहीं)।। 1।।

आश्चर्य है कि बाण के प्रहारों को झेल तो लेते हैं (योद्धा को बचा कर) फिर भी **कवच** की एक सीमा तो है (वह भी टूट सकता है)।। 2।।

देवाधिदेव शिव की कृपा के मेघ प्रभूत (ऐश्वर्य) वर्षा करते हैं परन्तु उनकी वृष्टि-सीमा भी तो निश्चित है।। 3।।

क्या प्रतिभा के बूते श्रेष्ठ कविगण सर्जना नहीं करते? किन्तु उनकी सर्जना की भी सीमा तो है।। 4।।

शब्द नाना प्रकार के (वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्य) अर्थों का बोध तो कराता ही है परन्तु उसकी (अर्थबोधिका) शक्ति की भी सीमा तो है ही (यह नहीं कि वह व्यङ्ग्यार्थ के आगे भी किसी चौथे अर्थ का बोध कराएगा)।। 5।।

समर्पित भक्त (कभी) स्वार्थ (आत्म-सुख) नहीं देखता। तथापि, उसकी भक्ति की भी सीमा है।। 6।।

वन-महिष बबर शेर से डरता तो है। परन्तु उसके भय की भी एक सीमा है (अन्यथा वह भी शेर से भिड़ जाता है)।। 7।।

दु:ख-विपत्ति में मित्र सन्मार्ग का निर्देश तो करता ही है किन्तु उसकी नीति (परामर्श) की भी एक सीमा तो है ही (कि उस पर अमल हो)।। 8।।

अभिराज किसका समादर नहीं करता? परन्तु उसकी प्रीति (आदर देने) की भी सीमा तो है (प्रीति पाने वाला यदि कृतघ्न निकल जाए तो आदरणीय कैसे होगा)।। 9।।

अपनी गीतियों से वह (अभिराज) सहृदयों को आह्लादित तो करता ही है। परन्तु उस आह्लादन की भी एक सीमा तो है ही।। 10।।

प्रचण्डखुण्टोऽहम्

मां प्रयत्नेन जहीहि, प्रचण्डऽखुण्टोऽहम्
मां सपत्नं न विधेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥1॥

भूमिगर्भेऽस्मि निगूढोऽश्मभिर्दृढीभूतः
ऐन्द्रदम्भोलिमवेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥2॥

नस्यकटुकं नु वृषं युञ्ज भो मया सार्धम्
छागभूतञ्च तमेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥3॥

क्रुद्धमहिषोऽपि न किल वेद हन्त शक्तिम्मे
सैन्धवे चापि दृशौ धेहि चण्डखुण्टोऽहम्॥4॥

स्थापय द्वारि खलानां रसोऽस्ति चेद्वैरे
मां सहन्तेऽत्र नु के हि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥5॥

बीक्षते यो न मदान्धीभवन्ममास्तित्वम्
खञ्जभूतं तमवेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥6॥

निम्बकदलीवटार्चनेन हन्त को लाभः?
मां स्वबन्धुं नु विधेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥7॥

समुद्यतोऽस्मि खलानां प्लवङ्गतां हर्तुम्
देवतां मां प्रणिधेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥8॥

यो भवेत्कोऽपि बली खुण्टमोटको हस्ती
मां सखे! त्वं सकृदेहि, प्रचण्डखुण्टोऽहम्॥9॥

रात्रिः 11.05
संस्थान-अतिथिकक्षः, दिल्ली
15.4.2012 ई.

मजबूत खूँटा

सँभाल करके बचो मुझसे, मजबूत खूँटा हूँ मैं। मुझे (अपना) वैरी मत बनाओ, **मजबूत खूँटा** हूँ मैं।। 1।।

पत्थर डाल-डाल कर दृढ़ बनाया गया मैं धरती के गर्भ में गहराई तक धँसा हुआ हूँ। मुझे तो बस **देवराज इन्द्र का वज्र** ही समझो, मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 2।।

नाथ (नाक में पड़ी रस्सी) के कारण विदकने वाले (अर्थात् मरकहे) बैल को बस बाँध दो मुझ से। फिर तो उसे (मिमियाता) बकरा ही बना समझो! मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 3।।

ओह! क्रुद्ध भैंसा भी तो मेरी शक्ति को नहीं हिला पाया (उखाड़ने की भरपूर कोशिशों के बाबजूद) और अब (बँधे हुए इस) घोड़े पर भी दृष्टि डाल लो! मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 4।।

यदि छकाने में रस लेना चाहते हो तो गुण्डों के दरवाजे पर मुझे गाड़ दो (तुरन्त संग्राम शुरू हो जाएगा) इस संसार में भला कौन हैं जो मुझे (खूँटे का गाड़ा जाना) सह पाएँगे? मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 5।।

मदान्ध बना हुआ जो कोई भी मेरी उपस्थिति को नहीं देखता (मेरी उपेक्षा करता है) उसे तो बस, **पैर से लँगड़ा** ही समझो। मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 6।।

भैया! नीम, केला और (पीपल) बरगद की पूजा करने का क्या लाभ? मुझे ही अपना भाई-रिश्तेदार बना लो (मुझे ही जल-अच्छत चढ़ाओ देवता मान कर) मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 7।।

मैं क्षुद्रजनों की **बँदरिया उछल-कूद** समाप्त कर देने के लिए तैयार बैठा हूँ। मुझ देवकल्प को प्रणाम करो। मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 8।।

समाज में जो कोई भी अपने को **खुण्टमोटक** हाथी (गजराज) मानता हो (उसे आमेत्रण है मेरा) मित्र! आओ एक बार तुम (भी जोर-आजमाइश के लिए!) मजबूत खूँटा हूँ मैं।। 9।।

अभिराजोऽहं गृद्ध्रः

अभिराजो राजेन्द्रस्समयं सुखं नयामि!
राधावल्लभगृहे गलञ्जलिकां प्रणयामि॥1।

नाऽत्र समयहन्तारश्शनैश्चराः ढौकन्ते
तस्मान्नक्तन्दिवं शारदापदं वहामि॥2॥

यत्र कुत्र संस्थानेऽस्मिन्निपतति मे दृष्टिः।
कविपण्डितशास्त्रज्ञसूरिसंघं पश्यामि॥3॥

अभ्यागतीभूय आगत इह किञ्चित्कर्तुम्
गृहीभूय सानन्दं स्वजनैः समं वसामि॥4॥

नैव विदेशो मनस्विनां कोऽपीति यदुक्तम्
तत्सत्यं प्रियकरं वसन्नत्राऽनुभवामि॥5॥

एकान्तेऽन्तो विघ्नानां नूनं हि जायते
आत्मप्रामाण्येन तद्धि तथ्यं कलयामि॥6॥

हिमवति कथं गुहायां व्यासोऽरचयद्विपुलम्
संस्थानैकान्ते सम्प्रति तदहं जानामि॥7॥

वटकल्पे सांस्थानिकभवने कक्षकुलायाः
अभिराजोऽहं गृद्ध्रः स्वीयकुलं रक्षामि॥8॥

प्रातः 7.22 संस्थान-अतिथिकक्षः
16.4.2012 ई.

गिद्ध-मैं अभिराज!

अभिराजराजेन्द्र (मैं) मजे में समय बिता रहा हूँ। (कुलपति) **राधावल्लभ** के घर (राष्ट्रियसंस्कृत-संस्थान) में बैठा ग़ज़ल रच रहा हूँ ।।1।।

यहाँ नहीं घूम रहे हैं समय नष्ट करने वाले सनीचर लोग। इसलिए रातदिन भगवती सरस्वती के चरण माथे लगाए बैठा हूँ।। 2।।

इस संस्थान में जहाँ कहीं भी मेरी दृष्टि पड़ती है (वहीं) कवियों, पण्डितों और शास्त्रज्ञ सूरियों की जमात को (उनके ग्रन्थरूप में)देख रहा हूँ।। 3।।

यहाँ अभ्यागत (रिसर्च फेलो) बन कर आया कुछ करने के लिए (परन्तु) **घर का मालिक** बना, आनन्दपूर्वक, स्वजनों के साथ रह रहा हूँ।। 4।।

मनस्वियों के लिए कोई भी पराया देश नहीं होता है, यह जो कहा गया है, इस प्रियंकर सत्य को, यहाँ रहते हुए, अनुभव कर रहा हूँ।। 5।।

निश्चय ही (निपट) एकान्त में सारे विघ्नों का अन्त हो जाता है। स्वतः प्रामाण्य से ही इस सचाई को आत्मसात् कर रहा हूँ। 6।।

हिमालय में, एक गुफा में कैसे (भगवान् कृष्ण द्वैपायन) व्यास ने विपुल (साहित्य) लिख डाला, उस रहस्य को अब संस्थान के इस एकान्त में समझ रहा हूँ।। 7।।

बरगद-सरीखे संस्थान के इस भवन में (सारे) कक्ष घोंसलों जैसे हैं। मैं अभिराज (राजेन्द्र) **हूँ गृद्ध** जो अपने कुल की रक्षा कर रहा हूँ।। 8।।

शिखरिणी

उत्प्रेक्ष्यते मयाऽलं का नाम शिखरिणी?
दृष्टाऽथवाऽस्त्यदृष्टा, का नाम शिखरिणी॥1॥

जन्मन्यहोऽनवाप्ताऽप्यस्मिञ्छतोद्यमैः
कुत्र स्थिताऽस्ति गूढा सा नाम शिखरिणी॥2॥

आनन्दवर्धनानां लावण्यकल्पना
वाच्यार्थभूतविश्वे व्यङ्ग्यैव शिखरिणी॥3॥

अभिधैव सा विचित्रा ननु कौन्तिकी मता
शतपत्रधर्मिणं मां विभिनत्ति शिखरिणी॥4॥

सा पूर्णतैव काचिद् बाभाति वाल्लभी[1]
गीतौ जिजीविषायां ध्रुवकं नु शिखरिणी॥5॥

परिणतशरन्निशायाः सा चन्द्रिकाऽनघा
यक्ष्ज्वरापहन्त्री सोत्कण्ठशिखरिणी॥6॥

सिक्ता रसैश्च रुद्रैर्गिरिजाऽष्टमूर्तिभिः
युक्त्यन्तरैर्न छिन्ना, मिलितैव शिखरिणी॥7॥

ननु पाल्वलीव तरणी कर्गदविनिर्मिता
नयनामृतं वितनुते सुखधाम शिखरिणी॥8॥

परितोऽपि ममालोकं नित्यं प्रसृत्वरा
छलयत्यहो रुचिम्मे साऽद्यापि शिखरिणी॥9॥

अपराह्णे 4.25 वादने
संस्थान-अतिथिकक्षः
20.5.2012 ई.।

1. आचार्यराधावल्लभः पूर्णतामेवालङ्कारम् अलङ्कारञ्चैव तं काव्यात्मानं मन्यते।

शिखरिणी

ढेर सारी कल्पनाएँ करता हूँ कि (आखिर) वह **शिखरिणी** (सुन्दरी) कौन है? कौन है वह शिखरिणी जिसे मैंने (कभी) देखा है अथवा नहीं भी देखा है।। 1।।

सैंकड़ों प्रयत्नों के बाबजूद, इस जन्म में भी तो मैंने उसे पाया नहीं। वह शिखरिणी कहाँ छिपी बैठी है।। 2।।

आचार्य आनन्दबर्धन की लावण्य-कल्पना-सरीखी लगती है वह! **वाच्यार्थ बने विश्व में व्यङ्ग्य (अप्रकाशित) ही है वह शिखरिणी।।3।।**

मुझे तो वह आचार्य कुन्तक की **विचित्र-अभिधा**-सी ही लगती है। वह शिखरिणी शतपत्र-धर्मी मुझ को तार-तार करती रहती है।। 4।।

वह मुझे प्रियतम की अभिलषित सन्तृप्ति जैसी प्रतीत होती है (अथवा आचार्य राघावल्लभाभिमत 'पूर्णता' सी लगती है जो अंलकार है और काव्यात्मा भी) जिजीविषा की गीति में ध्रुवा जैसी है वह शिखरिणी।।5।।

वह (शिखरिणी) परिपक्व शरन्निशाओं की रम्य चन्द्रिका सी है—विरही यक्ष के (काम) ज्वर की औषधिभूता! स्वयं भी सोत्कण्ठिता है वह शिखरिणी।। 6।।

(रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी—इस लक्षण के विरोध में शब्दच्छल) रसों से संसिक्त एवं (प्रियतम) द्वारा उपलालित तथा अन्यान्य युक्तियों से भी अ-पृथक्कृता वह शिखरिणी समरस ही है।। 7।।

लघु सरोवर में तिरती कागज से बनी नाव जैसी वह सुखधामभूता शिखरिणी नयनामृत का वितरण करती रहती है।। 8।।

मेरे दृष्टिपथ के चारों ओर नित्य ही चङ्क्रमण करती वह शिखरिणी आज भी अभिरुचि (ललक) को छलती रहती है।। 9।।